मूल्य १०/-

मानमन्दिर बरसाना

मासिक पत्रिका , वैशाख-ज्येष्ठ, श्रीकृष्ण सं.५२५०, वि.सं. २०८१ (मई २०२४ ई.), वर्ष ०८, अंक ०५

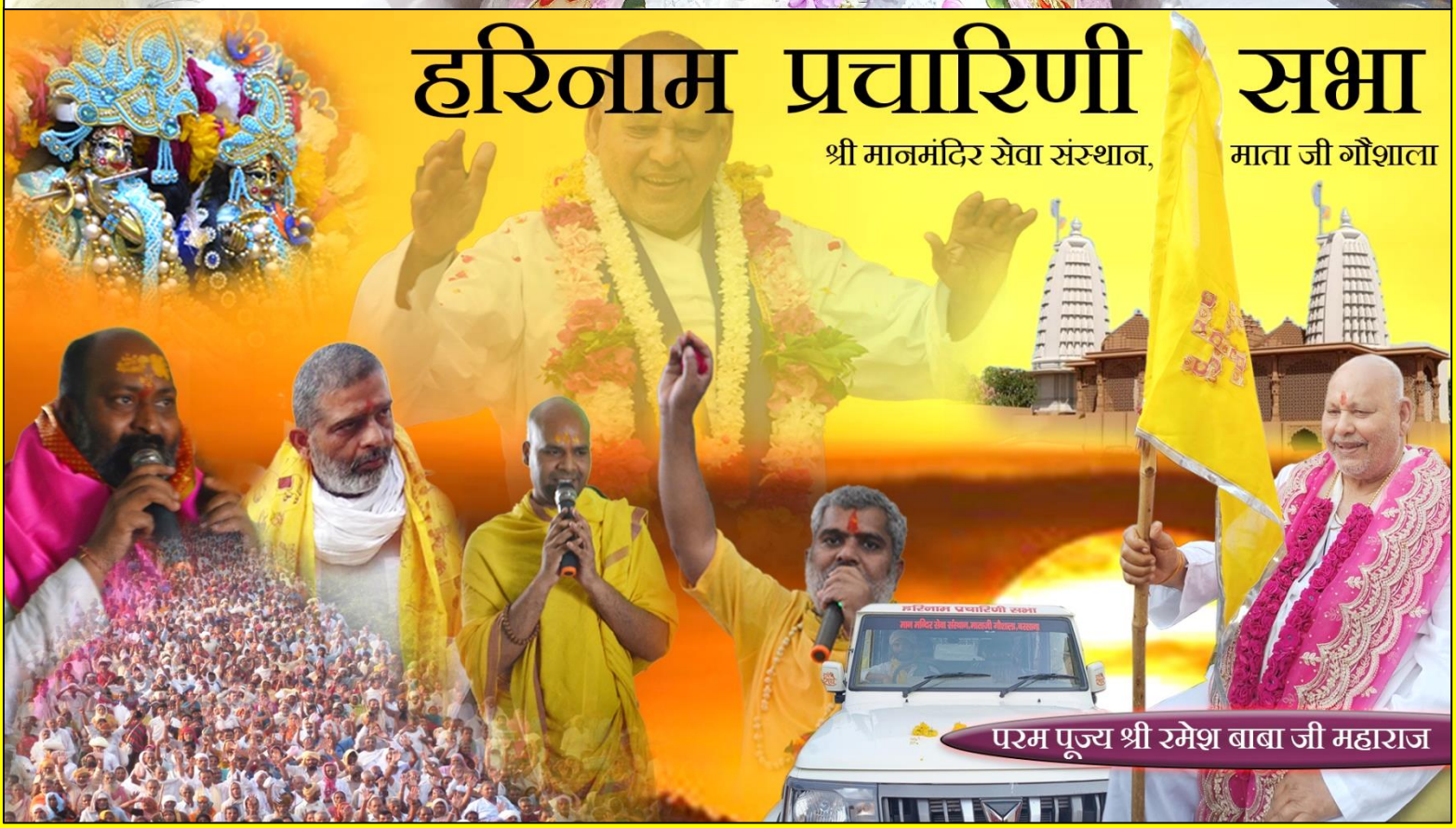

पूज्यश्री बाबा महाराजजी ने हरिनाम प्रचार का पुनः उद्घोष किया, गांवों व शहरों में हरिनाम प्रचार करेंगी मानमन्दिर के साधु व साध्वियों की टोलियाँ

अनुक्रमणिका

विषय- सूची		पृष्ठ- संख्या
१	भक्त-भगवान् का प्रेम-स्वरूप	०५
२	श्रीधाम-प्रेमी की रहनी	०८
३	विरह से 'प्रेम' की पहिचान	११
४	सर्वत्याग से ही सच्ची शरणागति	१३
५	ब्रजभावुकों की जीवनी	१६
६	श्रीभक्त-सेवी आराधक 'माधवग्वालजी'	२१
७	अक्षम्य 'भक्तापराध'	२६
८	सर्वोच्च भक्ति 'श्रीजी की शरणागति'	२८
९	आनन्द-मंगल की जननी 'गौमाता'	३०

।। राधे किशोरी दया करो ।।

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो ।

— *पूज्यश्री बाबामहाराज कृत*

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८.०० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं ।

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल**

प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर , गह्वरवन, बरसाना, मथुरा** (उ.प्र.)

mob. **राधाकांत शास्त्री** .....9927338666, Website :www.maanmandir.org)

(E-mail :info@maanmandir.org)

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले ।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें । हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है ।

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें । हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है – **सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ।।** (श्रीमद्भागवत३/७/४१)
अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता ।

प्रकाशकीय

वेदव्यासजी ने कहा है कि सतयुग में दस वर्ष तथा त्रेता में एक वर्ष और द्वापर में एक मास पर्यन्त कोई जप, तप, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्यादि साधनों को करता है तो कलियुग में मात्र एक दिवस भगवन्नाम सेवन करने मात्र से उसे वही फल मिल जाता है । कलियुग में न तो इतनी आयु होती है और न इतनी शक्ति कि कोई व्यक्ति उतना कठोर साधन कर सके । भगवान् ने दया करके अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ 'भगवन्नाम' में प्रविष्ट कर दी हैं । **"कलियुग केवल नाम अधारा । सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा ॥"** अतः साधकों को चाहिए कि सोते, जागते, समस्त कर्म करते हुए 'श्रीभगवन्नाम' का चिन्तन व गायन करते रहना चाहिए –

भय नाशन दुर्मति हरन कलि मँह हरि को नाम । निश दिन नानक जो भजै सफल होइ तेहि काम ॥
जिह्वा गुण गोविन्द भजो कान सुनो हरिनाम । कह नानक सुन रे मना परहि न यम के धाम ॥

नाम और नामी में किसी भी प्रकार का भेद नहीं है । नामी को जब तक किसी ने देखा नहीं, तब तक उसमें प्रीति करना अत्यन्त कठिन होगा, परन्तु नाम एक सरल व सुगम साधन है । इस नाम के सेवन से समस्त पापराशि शीघ्र ही जलकर भस्म हो जाती है । **"जबहि नाम हृदय धरा भया पाप का नाश । मानो चिनगारी आग की पड़ी पुराने घास ॥"** लेकिन दुःख की बात यह है कि हम जानते भी हैं और भगवान् ने हमें ऐसा सुअवसर भी मनुष्य-शरीर देकर प्रदान किया है, फिर भी हम नामाश्रय नहीं कर पाते हैं, क्यों ? कहते हैं –

"तुलसी पिछले पाप सों हरि चरचा न सुहाय । जैसे ज्वर के अंश से भोजन की रुचि जाय ॥"

कितना भी सुस्वादिष्ट भोजन बना हो परन्तु यदि हमें बुखार चढ़ा है तो वह सब भोजन अच्छा नहीं लगेगा । यही कारण है कि ऐसी समस्त पापराशि को जलाने के लिए दिन-रात श्रीहरिनाम का आश्रय कलियुग में सभी महापुरुष लेते रहे हैं और लेने की प्रेरणा देते हैं । हमारे ब्रज के परम विरक्त सन्त पद्मश्री श्रीरमेशबाबा ने घर-घर, गाँव-गाँव में हरिनाम कीर्तन का शंखनाद किया और लगभग चालीस हजार गाँवों में भगवन्नाम प्रभात फेरियाँ प्रारम्भ करायी । आज भी बाबा का यह प्रयास निरन्तर चल रहा है । मानमन्दिर के साधु एवं साध्वियाँ प्रतिदिन नाम-प्रचार करने जाते हैं । श्रीबाबामहाराज कहते हैं कि सृष्टि में अनन्त जीव हैं, जो साधन एवं शक्ति से शून्य हैं, उनका कल्याण कैसे होगा ?

पशु-पक्षी कीट भृंग बोली ते न पारे । सुन लेई हरिनाम तारा सब तरे ॥

जब आप नाम का गान करते हैं तो करोड़ों सूक्ष्म जीव 'भगवन्नाम' के श्रवण से तर जाते हैं । एक जीव को भी यदि भगवान् के नाम से जोड़ दिया जाय तो वह सत्कर्म कितने ही यज्ञ, जप, तप, स्वाध्याय, दान धर्म आदि से बहुत अधिक पुण्यशाली रहेगा । जहाँ आपकी आस्था हो जैसे महामन्त्र में अथवा युगल मन्त्र में भेद रहित होकर कोई भी नाम हमें निरन्तर भजना चाहिए । 'नाम' एक ऐसा साधन है, जिससे लौकिक-पारलौकिक सभी कामनाएँ शीघ्र पूरी होती हैं । आज हर प्राणी धन के पीछे दौड़ रहा है, परन्तु उसे यह पता नहीं कि धन की देवी तो नाम-सेवी के पीछे-पीछे दौड़ती रहती हैं कि इसकी चरणरज से मैं पवित्र हो जाऊँ । हमारे गुरुदेव ने कभी द्रव्य का स्पर्श तक नहीं किया परन्तु नाम की ऐसी शक्ति अर्जित की कि साठ हजार से अधिक गोवंश का पालन, ब्रजयात्रा-संचालन इत्यादि अनेक बड़े-बड़े कार्य स्वतः बिना कुछ माँगे सहज ही संचालित हो रहे हैं । आप भी नाम-गान अवश्य करें ।

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री
श्रीमानमन्दिर सेवा संस्थान

भक्त-भगवान् का प्रेम-स्वरूप

श्रीबाबामहाराज द्वारा कथित 'श्रीकुम्भनदासजी के चरित्र' (६/१२/२००९) से संकलित

श्रीवाल्मीकिजी ने भगवान् राम से कहा –

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु ।
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – १३१)

जिसको स्वप्न में भी कभी कुछ नहीं चाहिए, केवल भगवान् का प्रेम चाहिए; उसी के मनमन्दिर में आप निरन्तर निवास करें, वही आपका निजी घर है ।

हे राम ! आपके रहने का घर तो उस भक्त का हृदय है, जिसमें कभी कोई इच्छा ही पैदा नहीं होती है ।

नव योगेश्वरों ने कहा –

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः ।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥

(श्रीभागवतजी ११/२/५०)

जिसके हृदय में कामना, कामना सम्बन्धी कर्म और उसका बीज 'वासना' कभी उत्पन्न नहीं होते । जब वासना ही नहीं है तो वहाँ कामना कैसे होगी ? कामना का बीज 'वासना' है । वासना का बीज 'संस्कार' है । वासना की पुत्री है 'स्मृति' । स्मृति के भीतर है - राग और द्वेष । जब वासना ही नहीं है तो रागात्मिका स्मृति आयेगी ही नहीं, आ ही नहीं सकती । वासना ही रागात्मिका स्मृति लाती है । वासना नहीं है तो वह 'स्मृति' जिसके अन्दर राग है, काम है, वह कभी आ ही नहीं सकती । वहाँ केवल कृष्ण का निवास रहता है । एकमात्र वह 'कृष्ण' का स्थान, मन्दिर बन जाता है । ऐसे ही महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के शिष्य अष्टछाप के महापुरुष श्रीकुम्भनदासजी थे । भगवान् ने स्वयं कहा है –

मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात् स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किञ्चित् ।
येषां किमु स्यादितरेण तेषामकिञ्चनानां मयि भक्तिभाजाम् ॥

(श्रीभागवतजी ५/५/२५)

मैं अपने दासों के पीछे गट्ठर बाँधकर घूमता हूँ कि कुछ ले लो किन्तु वे कुछ नहीं लेते । भगवान् स्वयं अपने भक्तों का परिचय देते हैं कि जो मेरे निष्किञ्चन भक्त हैं, उनके पीछे-पीछे मैं अनेक इच्छित सामग्रियाँ लेकर घूमता हूँ परन्तु वे उधर दृष्टि ही नहीं डालते हैं । भगवान् कहते हैं कि मैं अनन्त हूँ, परात्पर तत्त्व मैं ही हूँ । स्वर्ग से मोक्ष तक जितने भोग हैं, मैं उनका स्वामी हूँ । मुझसे तुम कुछ भी ले लो लेकिन मेरे निष्किञ्चन भक्त कुछ भी नहीं लेते हैं । जब वे मुझसे ही नहीं लेते हैं तो औरों से क्या लेंगे ?

हम जैसे लोग अकिञ्चन भक्त नहीं हो सकते क्योंकि हमारे हृदय में राग है, द्वेष है; इसलिए हम लोग कभी भी अकिञ्चन नहीं हो सकते हैं । भगवान् की कृपा बना दे, यह अलग बात है । राग-द्वेष विषमता पैदा करते हैं, इनके रहते हम भक्त नहीं बन सकते । गीता में भक्त का लक्षण भगवान् ने बताया है –

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥

(श्रीगीताजी १२/१८)

मान-अपमान, शत्रु-मित्र आदि समस्त भेद 'भक्त' के लिए मिट जाते हैं । आसक्ति तो उसके हृदय में कभी आती ही नहीं है । आसक्ति का वहाँ प्रवेश ही नहीं हो सकता, इसलिए भक्त सदा समान रहता है । शत्रु-मित्र के प्रति उसके मन में कोई अन्तर नहीं रहता ।

श्रीकुम्भनदासजी की गरीबी को देखकर श्रीनाथजी ने गोस्वामी विट्ठलनाथजी के हृदय में प्रेरणा किया । वह सोचने लगे कि इनकी दरिद्रता (गरीबी) कैसे दूर हो ? एक बात और समझ लो । इसे समझना बहुत आवश्यक है कि भगवान् ऐसा क्यों सोचते हैं कि भक्त का दारिद्र्य दूर हो जाए ? यह तो बहुत छोटी-सी बात है । कभी वह कान्हा भंगी के लिए लड्डू चुराते हैं, किसी भक्त को कुछ देते हैं, किसी भक्त के पास स्वयं जाते हैं, किसी भक्त को साक्षात् धन देते हैं, जैसे - सुदामा आदि । किसी भक्त के लिए दूध-खीर की चोरी करते हैं, जैसे - श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी । भगवान् ऐसा क्यों करते हैं ? जब अपनी भक्ति दे दी, फिर भी भगवान् ऐसा करते हैं । गौसेवी भक्त के लिए प्रसाद की पत्तल चुराकर उसे पहुँचाते हैं, किसी को भोजन पहुँचाते हैं । किसी को पानी देते हैं । एक बार सूरदासजी लड्डू खा रहे थे, वह गले में अटक गया, प्राण जाने की हालत हो गई, उस समय उनका सेवक कहीं चला गया था, तब

श्रीनाथजी जल का लोटा लेकर पहुँच गये और उन्हें स्वयं अपने हाथों से जल पिलाया, जिससे उनकी प्राण रक्षा हुई । भक्तों के साथ ऐसी लीलायें भगवान् क्यों करते हैं ? इसका उत्तर भागवत में ध्रुवजी ने दिया है क्योंकि उनको अनुभव में यह बात आ गयी थी ।

सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म माशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः । अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान् वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥ (श्रीभागवतजी ४/९/१७)

सच्ची कामना तो केवल भगवान् के चरणों का भजन है । सत्य + आशीष – इस श्लोक का अन्वय बहुत टेढ़ा है । 'सत्याशिषो' को अलग-अलग करो । 'आशिषः' – संसार में जितनी भी कामनायें हैं, उनमें 'सत्या' अर्थात् सच्ची कामना एक ही है, 'तव पादपद्म' – आपके चरणकमल का भजन, आप ही 'पुरुषार्थमूर्ति' समस्त पुरुषार्थों के सार हैं । इस श्लोक में 'भगवन्' सम्बोधन है । **'पुरुषार्थमूर्ते तव पादपद्ममनुभजतः आशी'** – यह अन्वय लगेगा । समस्त पुरुषार्थों की सारमूर्ति आप, आपके चरणकमलों का जो भजन करता है, वह सच्ची कामना है, 'आशिषः' – अन्य संसार की जितनी भी कामनायें हैं, वे झूठी हैं । खाना-पीना, रोटी-कपड़ा, मकान, कम्बल, वस्त्र, जूता, रजाई-गद्दा आदि ये सब मिथ्या कामनायें हैं, फिर भगवान् ये सब चीजें अपने भक्त को क्यों देते हैं, जब ये सब भोजन-छाजन आदि झूठा (असत्य) है । भक्त दिवाकर की कथा भक्तमाल में वर्णित है । एक बार बहुत अधिक जाड़ा पड़ा । बर्फ गिरी थी, दिन में ठण्ड के कारण लोगों के दाँत बज रहे थे । उसी समय दिवाकरजी के घर पर भक्त लोग आ गये । उनके पास उस समय कुछ नहीं था, न दाल, न चावल, न आटा । कोई बनिया उनको उधार भी नहीं देता था, यह सोचकर कि वह सामान वापस नहीं आएगा, यह तो सब सामान मुड़िया साधुओं को खिला देता है । दिवाकरजी एक वैश्य के पास गये और बोले कि मेरे घर पर कुछ रिश्तेदार आ गये हैं । वैश्य बोला – 'तेरे रिश्तेदार रोज आते हैं, वही दो-चार मुड़िया आये होंगे । जा, मैं कुछ नहीं दूँगा ।' दिवाकरजी बोले – 'अरे भाई ! वे भूखे हैं ।' वैश्य – 'मैं क्या करूँ, वे भूखे हैं तो । मेरी दुकान हराम की नहीं है ।' दिवाकर – 'कुछ आटा-दाल दे दो, मैं तुम्हें चुका दूँगा ।' वैश्य – 'तेरे यहाँ रोज ही रिश्तेदार आते हैं, तू चुका नहीं पायेगा, कुछ सामान गिरवी रख दे ।' दिवाकरजी सोचने लग गये कि मेरे पास तो कुछ नहीं है । दिवाकरजी के पास एक ही रजाई थी । उन्होंने बनिया से कहा – 'मेरे पास तो केवल एक ही रजाई है ।' बनिया बोला – 'ठीक है, उसी को ले आ ।' वह जानता था कि रजाई के बिना इसका काम नहीं चलेगा, इसलिए इसे चुकाना होगा कहीं से पैसा माँगकर । दिवाकरजी रजाई ले गये और बनिया के यहाँ गिरवी रख दिया । आटा, दाल, चावल बनिया ने दे दिया तो दिवाकरजी ने घर आकर सब भक्तों को प्रसाद पवाया । जब सभी भक्त चले गये तो दिवाकरजी ने रात में ठाकुरजी को रजाई ओढ़ाकर शयन कराया और स्वयं कोने में जगमोहन में सिकुड़कर बैठ गये । बाहर से ठण्डी हवा आ रही थी तो दिवाकरजी के दाँत सर्दी के कारण बजने लगे किन्तु उन्होंने सोचा कि आज ठण्ड के कारण नींद तो आएगी नहीं, अतः कीर्तन करना चाहिए तो वह कृष्ण-कीर्तन करने लग गये ।

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे ।
हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

दिवाकरजी जाड़े में काँप रहे थे क्योंकि साधु-सन्तों की सेवा हेतु उन्होंने अपनी रजाई गिरवी रख दी थी । उधर इनके कष्ट को देखकर रात को श्रीठाकुरजी को भी नींद नहीं आई । ऐसा त्यागी भक्त होना चाहिए । प्रभु की ऐसी लीला हुई कि घोर जाड़े में भी एक क्षण को उन्हें झपकी लग गयी तो ठाकुरजी ने मन्दिर की किवाड़ खोली और उनको जो रजाई दिवाकरजी ने ओढ़ाई थी, वह ठाकुरजी ने दिवाकरजी को ओढ़ा दिया और फिर मन्दिर के भीतर आकर दरवाजा बन्द कर लिया । उस रजाई को पाकर दिवाकरजी को गहरी नींद आ गई । नींद आ गई तो मन्दिर में सुबह मंगला-आरती का दर्शन करने वाले आ गये और उन्होंने देखा कि दिवाकरजी सो रहे हैं । उन्होंने दिवाकरजी को जगाया – 'अरे दिवाकर जी ! आज मंगला आरती नहीं करोगे क्या ?' दिवाकरजी की आँख खुली तो देखा कि सब भक्त आ गये हैं और अपने शरीर पर उन्होंने रजाई देखी तो सोचने लगे कि यह ठाकुरजी की रजाई मेरे पास कहाँ से आ गयी । वह बनिया भी मन्दिर में आया था, जिसको दिवाकरजी ने रजाई

गिरवी रखी थी । उसने सोचा कि देखते हैं, अब जाड़े में वह क्या ओढ़ेगा ? कहीं से कम्बल लाया होगा तो वह भी छीन लूँगा । दिवाकरजी से वह बोला – 'मेरी रजाई दे, अभी तेरा इतना उधार बाकी है ।' तब तक लोगों ने कहा – 'यह तो ठाकुरजी की रजाई है ।' बनिया बोला – 'अरे, इसने ओढ़ लिया होगा, यह बेईमान है'; ऐसा कहकर वह उनकी निन्दा करने लगा और उनसे रजाई छीन ली । तब तक भगवान् ने दिवाकरजी के ऊपर दूसरी रजाई आसमान से फेंकी । उसको भी बनिया ने छीन लिया, फिर तीसरी रजाई आसमान से आई । तब सबकी आँख खुल गयी और लोग कहने लगे कि अरे ! इसे तो सच में कृष्ण ही रजाई ओढ़ाते हैं, यह ढोंगी नहीं है, इसने ठाकुरजी की रजाई नहीं ओढ़ी । इस तरह एक क्षण में उनका कलंक धुल गया और प्रसिद्धि फ़ैल गयी । वह बनिया भी दिवाकरजी के चरणों में गिर पड़ा और क्षमा माँगने लगा । ऐसी लीलायें भगवान् क्यों करते हैं ? ध्रुवजी का श्लोक इसका प्रमाण है – श्रीभागवतजी '४/९/१७' । ध्रुवजी कहते हैं कि सच्ची कामना तो यही है कि केवल भगवान् का ही स्मरण हो । न रोटी-दाल की चिन्ता हो, न वस्त्र की, न रजाई-शाल की चिन्ता हो, इन सबके बारे में तो हम जैसे मूर्ख लोग सोचा करते हैं । भक्त इन वस्तुओं के बारे में नहीं सोचते हैं, फिर भी भगवान् जबरदस्ती अपने भक्तों को रजाई ओढ़ाते हैं, लड्डू खिलाते हैं, दूध पिलाते हैं । 'अप्येवम्' – 'अपि' माने ऐसा होने पर भी 'अर्य' माने हे श्रेष्ठ प्रभो ! – 'अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान्' – भगवान् दीनों को वस्त्र भी देते हैं, भोजन भी देते हैं, क्यों ? 'वाश्रेव' – तुरन्त की ब्यायी हुई गाय को 'वाश्रा' कहते हैं, जैसे - तुरन्त की ब्याई गाय, 'वत्सक' – अपने बछड़े की सारी गन्दगी को जीभ से चाटकर साफ़ कर देती है । इसीलिए गाय के समान दया किसी जीव में नहीं होती है । 'वत्सला' नाम बछड़े वाली गाय का है, वत्सला से 'वात्सल्य' शब्द बना है । वात्सल्य केवल गाय में होता है । तुरन्त की ब्याई हुई गाय को 'वाश्रा' कहते हैं, जैसे वह अपने बछड़े पर अनुग्रह करने के लिए कातर रहती है, जैसे भूखा-प्यासा आदमी अपनी भूख-प्यास के कष्ट से कातर हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् को भी रोग लग गया है, वे कृपा करने के लिए कातर रहते हैं, इसीलिए भक्तों को रजाई भी देते हैं, भोजन भी देते हैं; ऐसा ध्रुवजी ने कहा है । भगवान् अपने भक्तों को सब वस्तु देते हैं, क्या नहीं देते हैं । इसीलिए श्रीनाथजी ने कुम्भनदासजी की गरीबी को दूर करने के लिए गोस्वामी विट्ठलनाथजी को प्रेरणा दी ।

यारी मोहन ते लगाय लै, ऐसो यार और कोउ नांय ||

या जग के सब यार एक दिन, साथ छोड़ भगजांय,
याकी यारी सच्ची यारी, जनम जनम निभ जाय |
जग के झूठे यार सबै, मतलब ते गांठ जुराय,
काम बने पै फिर नांय देखैं, नैना लेय फिराय |
लै लै रंग श्याम रसिया कौ, अमृत बहतो जाय,
मलमूतन को कहा भोगवो, माखी देख घिनाय |
ये संसार फूंस को छप्पर, आग लगै जर जाय,
चल री सखी श्याम रसिया घर, जहाँ अमर है जाय ||

श्रीधाम-प्रेमी की रहनी

गोस्वामी विट्ठलनाथजी से श्रीकुम्भनदासजी धन इत्यादि कभी भी नहीं लेते थे ।

प्राचीन काल के लोग गुरुओं का द्रव्य नहीं लेते थे । गुरु को तो भेंट किया जाता है ।

गोस्वामीजी ने श्रीनाथजी से कहा कि ये मुझसे तो कुछ लेंगे नहीं, मैं इनको रामत में ले जाऊँगा ।

(गोस्वामीजी कहीं बाहर जाते थे तो बड़े-बड़े सेठ उनको अपने घर पर आमन्त्रित करते थे और द्रव्य देते थे । गोस्वामीजी के साथ जो भी रहता था, उसको भी द्रव्य मिलता था । इसी को रामत कहते हैं ।) इसीलिए गोस्वामीजी ने श्रीनाथजी से कहा कि कुम्भनदासजी मेरे साथ रामत में चलें तो अपने-आप बहुत-सा धन इनको मिल जाएगा ।

प्राचीन काल में श्रीनाथजी का अपार वैभव था । अब भी नाथद्वारा में बहुत बड़ा वैभव है । मन्दिर में सोने-चाँदी की चक्कियाँ हैं, उनमें कस्तूरी-केसर पिसते हैं । सैकड़ों मन प्रतिदिन भोग लगता है । नाथद्वारा का मन्दिर भारत में प्रसिद्ध है । अब भी वहाँ श्रीनाथजी के नाम से गाड़ी भरकर सामान आता है । उसमें देने वाले का नाम नहीं रहता है ।

रामत में गोस्वामी विट्ठलनाथजी की पधरावनी होती थी । उनके साथ जो भी जाता था, उसे भी भेंट मिलती थी । लोग स्वर्ण के थाल भेंट करते थे, अशर्फियाँ भेंट करते थे । यद्यपि 'गोस्वामी विट्ठलनाथजी' कुम्भनदासजी के गुरु नहीं थे, उनके गुरु तो महाप्रभु वल्लभाचार्यजी थे किन्तु गोसाईंजी गुरुपुत्र थे तो उनका भी वे गुरु के समान आदर करते थे । सच्चे लोग गुरु की बात नहीं काट सकते, भगवान् की बात भले ही कट जाए ।

हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ।

'गुरु-सेवा' भगवत्सेवा से बड़ी है । इस शरीर से यदि 'गुरु-सेवा' हो गई तो वह 'भगवत्सेवा' से भी बड़ी है ।

यह तन विष की बेल री, श्रीगुरु अमृत खान ।
शीश दिये पै गुरु मिलें, तो भी सस्तो जान ॥

जब गोसाईंजी ने कुम्भनदासजी को अपने साथ रामत में चलने की आज्ञा दी तो कुम्भनदासजी बोले – 'जो आज्ञा ।' यद्यपि वे ब्रज के बाहर नहीं जाते थे, कभी गोकुल तक नहीं गये क्योंकि वहाँ बाल-भाव की उपासना है । केवल गिरिराजजी में ही रहते थे । किन्तु अब गुरु आज्ञा हो गयी तो उन्होंने स्वीकृति दे दी । गोसाईंजी बोले – 'कल राजभोग के बाद चलेंगे ।' कुम्भनदासजी ने कहा – 'जै-जै, आपकी जो आज्ञा ।' सुबह श्रीनाथजी के मन्दिर में मंगला-श्रृंगार आरती हो गयी । गर्मियों के दिन थे, तेज लू चल रही थी । राजभोग दर्शन हुआ, सबने प्रसाद पाया । उस ज़माने में बैलगाड़ी थी, मोटर-कार आदि साधन नहीं थे । अब तो कार में भी बैठे हैं लेकिन यदि ए. सी. नहीं लगा है तो मर गये । मनुष्य सुख-सुविधा के कारण कितना सुकुमार हो गया है । गोस्वामीजी के साथ बैलगाड़ी पर सवार होकर सभी वैष्णव जतीपुरा से चले । कुछ घंटे चलने के बाद पहला पड़ाव पूछरी पर दिया गया । जतीपुरा से पूछरी थोड़ी ही दूरी पर स्थित है । लू तेज चल रही थी । गोसाईंजी बोले – 'यहाँ दो-तीन घंटे विश्राम करके तब शाम को यहाँ से चलेंगे ।' बैलगाड़ी धीरे-धीरे चलती थी । पूछरी पर तम्बू लगा दिये गये । गोस्वामीजी के तम्बू में राजैश्वर्य था, नौकर-चाकर आदि सेवा में थे । सभी वैष्णव अपने-अपने तम्बू में सो गये किन्तु कुम्भनदासजी को नींद नहीं आई, उनको तो विरह सता रहा था । उन्होंने सोचा कि अरे ! गोसाईंजी तो ब्रज के बाहर गुजरात जा रहे हैं, इसलिए वे दोपहर की गरम लू में तम्बू के बाहर लताओं के पास जाकर श्रीनाथजी के विरह में एक पद गाने लगे ।

कितैक दिन ह्वै जु गये बिनु देखें ।
तरुण किशोर रसिक नन्दनन्दन, कछुक उठति मुख रेखें ॥
वह चितवनि वह हास मनोहर, वह नटवर वपु भेखें ।
वह शोभा वह कान्ति वदन की, कोटिक चंद विशेषें ॥
श्यामसुन्दर संग मिलि खेलन की, आवति जियरा अपेखें ।
'कुम्भनदास' लाल गिरिधर बिनु, जीवन जनम अलेखें ॥

कुम्भनदासजी ने कहा – बिना कृष्ण को देखे कितने दिन बीत गये ।

एक क्षण का भी विरह भक्त को एक कल्प के समान लगता है, इसको प्रेम कहते हैं । अभी एक-दो घंटे पहले जतीपुरा से श्रीनाथजी का दर्शन करके चले थे किन्तु कुम्भनदासजी को प्रतीत हुआ कि कितने दिन बीत गये

क्योंकि ब्रज के बाहर जा रहे हैं । वे श्रृंगार रस के किशोरावस्था के युगल सरकार के उपासक थे । अतः बोले कि जिनकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओं से भी बढ़कर है, ऐसे श्यामसुन्दर के साथ मैं जतीपुरा में खेलता था । उनके प्रति मन में कामना जग गयी है, अब क्या करूँ, मर भी नहीं सकता । धिक्कार है वह जीवन, वह जीवन लिखने लायक नहीं है, वह जीवन 'जीवन' ही नहीं है, वह मृत्यु है, वह जन्म 'जन्म' नहीं है । वह जीना कोई जीना नहीं है, जो श्रीकृष्ण के बिना जी रहा है । श्रीकृष्ण के बिना जो जन्म है, वह क्या जन्म है, वह क्या जीवन है, वह तो शव है, मुर्दा है ।

एक लता के कुञ्ज में, जब गरम हवा चल रही है, वहाँ तम्बू-तनात भी नहीं है, वहाँ विरह में कुम्भनदासजी यह पद गा रहे थे । भक्त का मन भगवान् के बिना कहीं नहीं लगता है । सच्चे विरही की ऐसी ही दशा होती है । वह न हँसता है, न किसी से बोलता है, उसकी मुद्रा ही अलग होती है । कुम्भनदासजी एक कुञ्ज में बैठकर कृष्ण-विरह में रो रहे थे, जबकि सब तम्बुओं के भीतर शीतल छिड़काव हो रहा था किन्तु कुम्भनदासजी को लू की कोई परवाह नहीं थी । वह तो एकान्त में रो रहे थे । विरही अकेले ही रोता है और हम लोग सभा में रोते हैं, बल्कि अपने आँसुओं को दिखाते हैं कि सब लोग देखें । विरही तो अपने आँसुओं को छिपाता है, उसका प्रेम गोपनीय होता है । इसी तरह कुम्भनदासजी कुञ्ज के एकान्त में रो रहे थे और इस पद को गा रहे थे – **'कितैक दिन ह्वै जु गये बिनु देखे ।'**

अचानक ही कोई वैष्णव शौच के लिए बाहर गया । जब काफी दूर चला गया तो उसको कुम्भनदासजी के पदगान की आवाज सुनाई पड़ी । उस समय वे पद की अन्तिम पंक्ति गा रहे थे ।

'कुम्भनदास' लाल गिरधर बिन, जीवन जनम अलेखें ।

वह क्या जीना है, लाल गिरधर के बिना जीना भी क्या जीना है । इससे तो मरना अच्छा है ।

जब उस वैष्णव ने पदगान की आवाज सुनी तो वह कुञ्ज में झाँककर देखने लगा । वहाँ देखा कि कुम्भनदासजी एक लता की डाल पकड़कर रो रहे थे, विशेष रो रहे थे, ऐसा लगता था कि इनके प्राण ही चले जायेंगे, हिचकी लेकर रो रहे थे । वैष्णव ने सोचा – 'अरे बाप रे बाप ! इनको कितना अधिक कष्ट है । इतनी गरम हवा लू में ये रोने के लिए बाहर चले आये ताकि कहीं कोई हमारा रोना न देख ले ।' इसको प्रेम कहते हैं । वैष्णव ने विचार किया कि मुझे गुसाईंजी को सूचना देना चाहिए, नहीं तो कुम्भनदासजी जीवित नहीं रह पायेंगे, इनका तो प्राण ही चला जाएगा । वह दौड़कर गुसाईंजी के पास गया और बोला – जय-जय...जय-जय ! गोसाईंजी ने पूछा – 'क्या है ?' वैष्णव – 'कुम्भनदासजी की बड़ी बुरी हालत है ।' गोसाईंजी – 'बुरी हालत है, क्या बीमार हो गये ?' वैष्णव – 'मैं कैसे कहूँ ? उनका रोग दूसरा है, उसे आप ही समझ सकते हैं ।' गोसाईं जी – 'वे कहाँ हैं ?' वैष्णव – 'वे बाहर हैं । क्या आप लू में चल सकेंगे ?' गुसाईंजी – 'अरे क्यों नहीं ? कुम्भनदास जैसे परम वैष्णव के लिए लू में क्यों नहीं चलूँगा ? अच्छा, तुम आगे चलो ।'

आगे-आगे वे वैष्णव और उसके पीछे गुसाईंजी जाने लगे । गुसाईंजी सोचने लगे कि कुम्भनदासजी को क्या हो गया है ? वैष्णव गुसाईंजी को उस कुञ्ज में ले जाकर बोला – 'आप यहाँ खड़े होकर देख लीजिये ।' वह वैष्णव स्वयं बाहर चला गया । गुसाईंजी ने भीतर जाकर देखा कि कुम्भनदासजी विरहावेश में रोते हुए गा रहे थे । गोसाईंजी ने सोचा कि ये जी नहीं सकते । अभी तो जतीपुरा से चले एक-दो घंटे ही बीते हैं और इनकी ऐसी अवस्था हो गयी । गुसाईंजी चुपचाप चले आये । उन्होंने उस वैष्णव से कहा – 'तुम वहाँ जाओ और कुम्भनदासजी से कहना कि गोसाईंजी बुला रहे हैं ।'

वह वैष्णव कुञ्ज में गया और कुम्भनदासजी से बोला – अरे कुम्भनदासजी !

आवाज सुनकर कुम्भनदासजी तुरन्त अपने आँसू पोंछकर बोले – 'क्या बात है ?' वैष्णव बोला – 'आपको गुँसाईजी ने बुलाया है ।' कुम्भनदासजी तुरन्त ही स्वस्थ होकर, आँसू पोंछकर इस तरह चले, मानो कुछ हुआ ही नहीं । गोसाईंजी के पास जाकर वे बोले – 'जय हो ! जय हो !!' गुँसाईजी – 'कहो कुम्भनदासजी क्या समाचार है ?' कुम्भनदासजी – 'आपकी कृपा है तो सब कुशल है ।' गुँसाईजी – 'तुम कहीं गये थे क्या ?' कुम्भनदासजी – 'हाँ, लघुशंका करने गया था ।' वे अपने आप को छिपाने

लगे । गुँसाईजी सब समझ गये कि ये अपना सब मामला छिपा रहे हैं । अपने प्रेम, अपने विरह को प्रकट नहीं कर रहे हैं । गुँसाईजी – 'कहाँ गये थे ?' कुम्भनदासजी – 'किसी कुञ्ज में गया था ।' गुँसाईजी – 'अभी गये थे क्या ?' गुँसाईजी बात को निकाल रहे हैं किन्तु कुम्भनदासजी छिपा रहे हैं । वे इधर-उधर की बात कहके अपने को छिपाने लगे ।

गुँसाईजी – 'तुम तो बहुत देर से यहाँ नहीं हो ।' कुम्भनदासजी – 'हाँ, हो सकता है । जय-जय ! मैं कहीं बैठ गया था ।' गुँसाईजी – 'बैठकर तुम क्या कर रहे थे ?' अब गुरुदेव से कैसे छिपायें, अतः कुम्भनदासजी बोले – 'मैं कुछ गा रहा था ।' गुँसाईजी बोले – 'क्या गा रहे थे ? मुझे भी सुनाओ ।' अब तो कुम्भनदासजी उसी पद को गाने लगे । गुँसाईजी ने कहा कि पूरा पद सुनाओ । कुम्भनदासजी गाने लगे । जब उन्होंने यह पंक्ति गाई –

'कुम्भनदास' लाल गिरधर बिनु, जीवन जनम अलेखें ।

इस कड़ी पर गुँसाईजी ने उनको रोक दिया और बोले – 'रुको, तुम गा रहे हो – 'जीवन जनम अलेखे' अर्थात् उस जीवन को धिकार है । मैं समझ गया । कुम्भनदासजी तुम मेरे साथ मत चलो । तुम तो दो घंटे में ही जीवन जनम अलेखे बताने लगे । ऐसी स्थिति में तुम क्या रामत करोगे ?' कुम्भनदासजी बोले – 'नहीं, आपकी आज्ञा से चलूँगा ।' गोसाईजी ने कहा – 'नहीं, तुम्हारे लिए तो श्रीनाथजी रो रहे हैं ।'

जब भक्त भगवान् के लिए रोता है तो भगवान् भी उसके लिए रोते हैं । यह बात स्वयं श्रीकृष्ण ने अपने मुख से कही है, रासपञ्चाध्यायी में गोपियों से कही है –

एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः । मया परोक्षं भजता तिरोहितं मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ॥ (श्रीभागवतजी १०/३२/२१)

गोपियो ! मैं कहीं गया नहीं था । तुम लोग मेरे विरह में रो रही थीं तो मैं भी रो रहा था, तुम्हारा भजन कर रहा था । तुमने मेरे लिए सब कुछ छोड़ा है तो मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ ?

जो प्रभु के लिए त्याग करता है, क्या प्रभु उसे कभी छोड़ सकते हैं ? ये गोविन्द के वचन हैं ।

श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा कि तुमने मेरे लिए क्या नहीं छोड़ा ? लोक छोड़ा, वेद छोड़ा, स्वधर्म छोड़ा, धर्म-अधर्म का कुछ भी विचार नहीं किया । ऐसा प्रेम, ऐसी शरणागति संसार में कहाँ है ? तुमने मेरे लिए सारा परिवार, माता-पिता, पति-पुत्र आदि सब छोड़ दिये । ऐसी स्थिति में मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ ? हे अबलाओ ! तुम यहाँ रो रही थीं और तुम्हारी अनुवृत्ति के लिए मैं छिपकर रो रहा था । 'तिरोहित' का अर्थ है कि छिप कर रो रहा था, ताकि कोई मेरे आँसू न देख ले कि कृष्ण रो रहे हैं । ये भागवत में गोपिकाओं के प्रति श्रीकृष्ण के वचन हैं – **'मया परोक्षं भजता तिरोहितम्'** मैं तुम्हारे विरह में छिपकर पीछे से रो रहा था, इसलिए तुम लोग मुझमें दोष मत देखो । तुम लोग मेरी प्रिय हो । मैं तुम्हारा प्रेमी हूँ ।

इसीलिए गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने कुम्भनदासजी से कहा – 'कुम्भनदासजी ! अभी जाओ । मैं तुमको इसलिए भेज रहा हूँ क्योंकि तुम्हारे बिना श्रीनाथजी रो रहे हैं ।' कुम्भनदासजी – 'ऐसा है !' गुँसाईजी – 'हाँ, इसलिए अभी जाओ ।' उनकी आज्ञा पाकर कुम्भनदासजी तुरन्त जतीपुरा श्रीनाथजी के मन्दिर की ओर दौड़े ।

गौओं का समुदाय जहाँ बैठकर निर्भयतापूर्वक साँस लेता है, वह उस स्थान की शोभा बढ़ा देता है और वहाँ के सारे पापों को खींच लेता है । (महाभारत, अनुशासनपर्व – ५१/३२)
गो भक्त के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है । (महाभारत, अनुशासनपर्व – ८३/५२)
गौओं के मध्य में ईश्वर की स्थिति होती है । (महाभारत, अनुशासनपर्व – ७७/२९)
(१४) जिस घर में गाय नहीं है, वह घर श्मशान के समान है । (अत्रि संहिता – ३१०)
(१५) अट्ठाईस करोड़ देवता गौ के रोमकूपों में स्थित हैं । गौमूत्र में भगवती गंगा के पवित्र जल का निवास है और गोमय में भगवती यमुना तथा सभी देवता प्रतिष्ठित हैं ।

विरह से 'प्रेम' की पहिचान

बाबाश्री के संध्याकालीन सत्संग (७/१२/२००९) से संकलित

प्रेम की कसौटी विरह है । चैतन्य महाप्रभुजी ने कहा था –

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायतम्
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्द विरहेण मे । ।

विरह में एक-एक निमेष युग की तरह लगता है । ऐसी उत्कण्ठा होती है, उसको विरह कहते हैं । करोड़ों प्रलय की अग्नि एक साथ जले, उससे भी अधिक तीव्र दाह का अनुभव श्रीराधा-माधव को विरह में होता है, इतना तीव्र प्रेम है वहाँ पर ।

विच्छेदाभासमानादहह निमिषतो गात्रविस्रंसनादौ
चंचत्कल्पाग्निकोटिज्वलितमिव भवेद् बाह्यमभ्यन्तरं च ।

(श्रीराधासुधानिधि – १७३)

विच्छेदके आभास मात्र से करोड़ों कल्पाग्नियों के समान बाह्य और भीतर जो दाह होता है, उसको विरह कहते हैं । विच्छेद नहीं हुआ है, विच्छेद के केवल आभास मात्र से इतना अधिक दाह उत्पन्न होता है, ऐसा राधामाधव का प्रेम है । विरह के आभास मात्र से शरीर फटने लगता है, वही महाभाव की दशा कलिकाल में महाप्रभु चैतन्यदेव ने दिखायी । कृष्णविरह की अधिकता में उनके शरीर की ग्रन्थियाँ खुल जाती थीं, हाथ-पाँव अलग-अलग से हो जाते थे । इसको 'विस्रंसन' कहते हैं । इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी इस स्थिति का प्रेम नहीं है । अतः हम लोग इसको समझ नहीं सकते । एक क्षण के तीसरे भाग को 'निमेष' कहते हैं । इतनी देर में ही श्रीराधामाधव को ऐसे विरह का अनुभव होता है, जैसे करोड़ों प्रलय की अग्नियाँ एक साथ प्रज्वलित हो गयी हों । बाहर और भीतर इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । यह कोई अतिश्योक्ति नहीं है क्योंकि स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने कहा था – 'युगायितं.....।' एक-एक निमेष मुझे युग की तरह लग रहा है । आँखों से वर्षा हो रही है । (उनकी आँखों से आँसू टपकते नहीं थे, फुहार चलती थी) गोविन्द के विरह में सारा संसार शून्य लगता है । ऐसा लगता है कि संसार में कोई नहीं है, संसार मृतप्राय हो गया है । इसको कृष्णप्रेम कहा गया है । सारा संसार शून्य है, त्रिलोकी का सम्पूर्ण वैभव मिट्टी है । भगवत्प्रेम तो दूर है, जब सती अनुसूइयाजी ने सीताजी को उपदेश दिया तो उन्होंने बताया कि चार प्रकार की पतिव्रतायें होती हैं । प्रथम कोटि की पतिव्रता वह होती है, जिसको संसार में अन्य कोई पुरुष दिखायी नहीं देता है । उसके लिए संसार में कोई पुरुष है ही नहीं, फिर आकर्षण होना तो बहुत दूर की बात है । दूसरे प्रकार की पतिव्रता वह होती है, जिसको पुरुष तो दिखायी पड़ते हैं किन्तु उनको वह पिता और भाई की तरह देखती है, परन्तु उत्तम कोटि की पतिव्रता को तो कोई पुरुष दिखायी ही नहीं पड़ता है, वैसे ही उत्तम कोटि के प्रेम में सारा संसार शून्य हो जाता है, इसे गोविन्द का विरह कहा गया है । गोपियों ने भी कहा था –

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥

(श्रीभागवतजी १०/३१/१५)

हे गोविन्द ! तुम जब गाय चराने के लिए वन में जाते हो, उस समय दिन में एक त्रुटि (सौ त्रुटियों का एक लव, तीन लव का एक निमेष और तीन निमेष का एक क्षण यानि एक क्षण का सत्ताईस सौ वाँ या तीन हजारवाँ हिस्सा) ही तुम्हारे बिना युग के समान लगता है । १७ लाख वर्ष का सतयुग, १३ लाख वर्ष का त्रेता और १२ लाख वर्ष का द्वापरयुग होता है यानी ब्रजगोपियों को श्रीकृष्ण को देखे बिना एक त्रुटि लाखों वर्षों के बराबर प्रतीति होता था । ऐसी जो मन की स्थिति होती है, उसको प्रेम कहते हैं, उसको विरह कहते हैं । गोपियाँ कहती हैं कि इसी विरह में हमारा समय बीतता है क्योंकि जब तुम सामने आते हो, तब भी यही दुःख रहता है, क्यों ? क्योंकि तुम्हारा दर्शन करते समय जब हमारी पलकें गिर जाती हैं तो ऐसा लगता है कि इन पलकों को बनाने वाला ब्रह्मा जड़ है, इसने हमारी आँखों में पलक को क्यों बनाया ? वह तुम्हारा परम सुन्दर मुख, जिस पर घुँघराली अलकें लटक रही हैं, ऐसा जो तुम्हारा सुन्दर मुख है, उसको देखने वाली हम गोपियों की आँखों में पलक बनाने वाला ब्रह्मा जड़ है । प्रेम की कसौटी विरह है । विरह नहीं तो प्रेम नहीं है, इसीलिए जिन भक्तों को विरह हुआ, जैसे कुम्भनदासजी की विरह में क्या दशा हो गयी कि उन्होंने गाया – 'कितै दिन ह्वै जु गये बिन देखे ।' थोड़ी ही

देर पहले वह जतीपुरा से श्रीनाथजी के राजभोग का दर्शन करके चले थे, फिर भी कहते हैं कि हे ठाकुर जी ! तुम्हें देखे बिना कितने दिन बीत गये । दशरथजी का शरीर भी इसी प्रकार के विरह में छूटा था । केवल राम अयोध्या से निकलकर गये, उसी समय वह कहने लगे –

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते ।
तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – १५५)

ऐसा प्रेम भगवान् और भगवान् के भक्तों के प्रति भी होता है । जैसे भक्तमाल में कथा है सुतविषदा बाइयों की, जिन्होंने सत्संग न छूट जाये, इसलिए अपने पुत्र को विष दे दिया कि किसी तरह सन्त रुक जाएँ । राजमहल में सत्संग होता था । एक दिन सन्त जाने लगे तो रानी समझ गयी कि सन्त के वियोग में राजा का प्राण नहीं बचेगा और मैं विधवा हो जाऊँगी । राजा के प्रेम के कारण सन्त बहुत दिनों तक महल में रुके रहे । उस समय राजमहल एक मन्दिर बन गया था क्योंकि वहाँ अहर्निश कथा और कीर्तन होता रहता था । सन्त विरक्त होते हैं, एक दिन उन सन्त ने राजा से कहा कि कल सबेरा होते ही मैं चला जाऊँगा । बहुत दिन तक मैं आपके महल में रुक गया, अब और नहीं रहूँगा, कल तो अवश्य ही चला जाऊँगा । राजा की दशा देखकर रानी समझ गयी कि ये सन्त के विरह में जी नहीं सकेंगे, इससे अच्छा है कि मैं अपने बेटे को ही विष देकर मार डालूँ, जिससे पति तो बच जाएगा । बेटे की मृत्यु से सन्त यहीं रुक जायेंगे । इसीलिए रानी ने अपने पुत्र को विष दे दिया, स्वयं माँ ने अपने पुत्र को विष दे दिया । भक्ति मार्ग बड़ा ही विचित्र है । क्या कर्म है, क्या विकर्म है, भक्त यह सब नहीं सोचता । प्रेम एक ऐसी ही वस्तु है । सौ-सवा सौ साल पहले वृन्दावन में एक कोकिल साँई नाम के सन्त हुए हैं । उनके यहाँ पहले मैं भी जाता था । लोग उन्हें मिठड़े साँई भी कहते हैं क्योंकि वे बड़े मीठे स्वभाव के थे, बड़े रसिक थे । इनका जब शरीर छूटा तो उनके अनेक सत्संगी उसी समय कुआँ में कूद पड़े कि साँई के बिना अब हम कैसे जियेंगे । वृन्दावन के प्रसिद्ध सन्त स्वामी अखण्डानन्दजी ने भी उनके विषय में एक पुस्तक लिखी थी – 'मेरे साँई कोकिल ।' वह पुस्तक भी मैंने पढ़ी है ।

इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी लिखा है कि सन्त की और दुष्ट की पहचान एक-सी होती है । दुष्ट का मिलना मृत्यु है, वह भगवान् से विमुख कर देगा । दुष्ट का मिलना मौत है और भक्त का बिछुड़ना मौत है ।

बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं ।
मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥ (श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड -५)

मेरे परिचय के एक सन्त खो गाँव में रहते थे । उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी एक शिष्या ने अन्न-जल का परित्याग कर दिया । वहाँ के ब्रजवासियों ने मेरे पास आकर कहा कि आप चलकर उसे समझाइये । मैंने खो में जाकर उससे कहा कि तुम्हारे गुरुदेव तो चले गये, अब तुम मरकर क्या करोगी ? इससे अच्छा है कि इस आश्रम में रहकर 'भगवन्नाम' का दीपक जलाओ, कीर्तन करो, इस प्रकार अपने गुरुदेव की सेवा करो । वे सन्त मुझे बहुत मानते थे, मानगढ़ भी आया करते थे । उनके प्रेम के ही कारण मानगढ़ की ब्रजयात्रा प्रतिवर्ष खो में रुकने लगी । जब मैंने उनकी शिष्या को समझाया, तब उसने जल पिया, नहीं तो वह मर ही जाती । इस तरह से विरह की बहुत-सी घटनायें अब भी दिखाई पड़ती हैं । कुम्भनदासजी ने भी इसीलिए कहा था – "कुम्भनदास लाल गिरधर बिन, जीवन जनम अलेखें ।" यह जीना भी कोई जीना नहीं है । यह कोई जीवन नहीं है कि हम लोग कृष्ण के बिना जी रहे हैं । जब सारा संसार शून्य प्रतीत हो, तब समझो कि कुछ प्रेम का आभास आया ।

जीने को जी रहा हूँ मैं, उसके बगैर भी मगर ।
जिन्दगी जिसको कह सकूँ, ऐसी तो जिन्दगी नहीं ॥

आली री मेरे नैणां बाण पड़ी । चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी ।
कबकी ठाड़ी पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी । कैसे प्राण पिया बिन राखूं, जीवन मूल जड़ी ।
'मीरा' गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी ।

सर्वत्याग से ही सच्ची शरणागति

कुम्भनदासजी की असह्य विरह दशा को देखकर गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने उनसे कह दिया – जाओ कुम्भनदासजी ! तुम्हारे बिना तो श्रीनाथजी भी रो रहे हैं ।

वास्तव में जब प्रभु के लिए भक्त रोता है, तड़पता है तो प्रभु भी उसके लिए रोते, तड़पते हैं । हम लोगों में वह तड़पन नहीं है क्योंकि हम विषयी हैं । जब तक संसार के विषयों में मन है, तब तक विरह कभी नहीं जाग सकता । जब तक मनुष्य को संसार जीवित दिखायी देता है, सत्तावान दिखायी देता है कि यह धन है, यह रूप है, यह भोग है, यह परिवार है, तब तक कभी भी उसके अन्दर कृष्ण का विरह नहीं जागेगा ।

जो अपनी हस्ती रखते हैं, वे प्रेम निभाना क्या जानें ।
निज जीवन से है मोह जिन्हें, वे मरना-मिटना क्या जानें ।
जो इन्द्रिय सुख के भोगी हैं, प्रभु हेतु तड़पना क्या जानें ॥

हम जैसे लोग तो लड्डू-पेड़ा के लिए तड़पते हैं, पैसे के लिए तड़पते हैं – हाय पैसा, हाय भोग । ऐसे में कृष्णविरह कैसे जागेगा, नहीं जागेगा । जिसको विरह नहीं है, उसको प्रेम कहाँ है ।

कभी न गाया गीत विरह के, वह प्रीति स्वरों को क्या जानेगा ।
विष्ठा भोगों का कीड़ा जो, युगल प्रेम रस क्या जानेगा ॥

सुमित्रानन्दनपन्त ने कहा था –

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजे होंगे गान ।
उमड़ के नयनों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान ॥
मूक कविता वही होगी, 'आँसुओं में' जिसमें शब्द नहीं थे ।

जब विरह के आँसू गिरते हैं तो मूक कविता निकलती है । उस कविता को सुनने वाला केवल प्रभु है ।

तारों की झनकार न झूमा, वह हृदय तार को क्या जानेगा ।

अंग्रेजी के कवि शेक्सपियर ने कहा था कि जो संगीत नहीं जानता है, वह हत्या कर सकता है । वह अत्यधिक हिंसक हो सकता है ।

भैंस के आगे बीन बाजे, भैंस खड़ी अगुआवे ।

भैंस को संगीत से शत्रुता है । राधारानी ब्रजयात्रा में निरन्तर कीर्तन होता रहता है । जब रास्ते में चलते समय भैंस आ जाती है तो कीर्तन को रोकना पड़ता है । इसीलिए संगीत का सम्बन्ध हृदय से है । जो विरही है, वही गायेगा । सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त जब गाते थे तो भगवान् सामने बैठकर उनका गान सुनते थे ।

पत्थर दिल जिसका, फूलों की कोमलता को क्या जानेगा ?
विष्ठा भोगों का कीड़ा, वह युगल प्रेम रस क्या जानेगा ?

कुम्भनदासजी के विरह की हम लोग कल्पना भी नहीं कर सकते, यद्यपि शब्द कुछ विरह के इसीलिए रखे गये, परन्तु शब्द तो शब्द ही हैं और अनुभव अनुभव होता है ।

ए री हेली लाख लोग नगरी रहें,
रसिया बिन कछु न सुहाये ।
ए री राय बेल और मोंगरा,
केतकी फूली बहार ।
ए री सबै फूल फीके लगैं,
बलमा बिन कैसी बहार ॥

जब गोस्वामीजी ने कुम्भनदासजी को श्रीनाथजी के पास जाने को कहा तो वह पूंछरी से दौड़े और जब जतीपुरा आये, उस समय श्रीनाथजी का उत्थापन हो रहा था । उस समय कुम्भनदासजी को श्रीनाथजी का दर्शन मिला । प्रत्येक श्रीविग्रह के दो रूप होते हैं । एक भक्तानुग्रहकारक और दूसरा सर्वानुग्रहकारक । सर्वानुग्रहक रूप में हम लोगों को मूर्ति दिखायी पड़ती है, जबकि भक्तों को उसी श्रीविग्रह में भगवान् का साक्षात् रूप दिखायी पड़ता है, जिसे भक्तानुग्रहकारक कहते हैं ।

श्रीनाथजी के मन्दिर में कुम्भनदासजी ने उस समय यह अत्यन्त प्रसिद्ध पद गाया, जिसका अर्थ यह है कि यदि तुम्हारे हृदय में विरह है तो ऐसा हो ही नहीं सकता है कि कृष्ण तुमको न मिलें । मिलन की तीव्र आकांक्षा को चोंप कहते हैं, जिसमें विरह सुई की तरह रोम-रोम में चुभे ।

जोपैं चोंप मिलन की होय ।
तो कत रह्यो परै सुनि सजनी, लाख करै जो कोय ॥

यदि तुम्हें विरह व्याप गया तो सब बात बन जायेगी । **'जो पै विरह परस्पर व्यापै'** तुम रोओगे तो ठाकुरजी भी तुम्हारी याद में तुमको रोते हुए मिलेंगे । जैसे श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा था कि तुम लोग मेरे लिए रो रही थी और मैं भी छिपकर तुम्हारे लिये रो रहा था ।**'तो यह बात बनै'**

उस समय न लोक का ध्यान रहता है, न कुटुम्ब का, न किसी मर्यादा का ध्यान रहता है ।

लोक लाज कुल की मर्यादा, एकहु चित न जनै ।
कुम्भनदास जाहि लगन लगी हो, तो कत और सुहाय ॥

संसार का सब सम्बन्ध, भोगादि फीका लगता है ।

जो रघुनाथ चरन अनुरागे । तृन सम रोग भोग सब त्यागे ॥

वहाँ भोग कहाँ है ? **"गिरिधर लाल रसिक बिनु देखे, छिन-छिन कलप बिहाय ।"** हम लोगों के हृदय में प्रेम नहीं, काम है ।**"काम भुजंग डसत जब जाही । विषय नीम कटु लगत न ताही ॥"** जिसको काला सर्प काट लेता है, उसकी पहचान यही है कि उसे कड़वी नीम की पत्ती खिलाओ तो वह मीठी लगती है, क्यों ? क्योंकि विष इतना कड़वा होता है कि जब वह रोम-रोम में भिंच जाता है तो उसके कड़वेपन के आगे नीम मीठी लगती है । हमको विषय-भोग, मल-मूत्र के भोग अच्छे क्यों लगते हैं, क्योंकि हमें काम रूपी भुजंग (सर्प) ने काट लिया है, उस सर्प का विष चढ़ गया है, इसीलिए निकृष्ट मल-मूत्र के भोग अच्छे लगते हैं ।

इसी पद का एक दूसरा पाठ भी है –

'कुम्भनदास' जेहि तन लागी, ताहि न और सुहाय ।
गिरधर लाल तोय देखे बिन, पल-पल कलप लखाय ॥

यह पद जब कुम्भनदासजी ने गाया तो श्रीनाथजी भी प्रेम में डूब गये और कुम्भनदासजी को देखकर मुस्कुरा गये । भक्त भगवान् का विरह नहीं सह सकता तो भगवान् भी भक्त का विरह नहीं सह सकते हैं । स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है कि मैं भक्त का विरह नहीं सह सकता ।

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा ॥

(श्रीभागवतजी ९/४/६४)

भगवान् अपने भक्त से इतना प्यार करते हैं कि कहते हैं – मैं भी भक्त के बिना जीवित नहीं रह सकता । लक्ष्मी भी भक्तों के बिना कड़वी लगती हैं । जिन भक्तों की एकमात्र गति मैं हूँ । एकमात्र गति कैसे हैं ?

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥

(श्रीभागवतजी ९/५/६५)

तुम प्रभु के लिए त्याग करोगे तो प्रभु तुम्हारा ऋणी हो जाएगा । सच्चा भक्त अपनी स्त्री, मकान, बेटा-बेटी, माँ-बाप, धन, यह संसार, परलोक और प्राणों तक के मोह का त्याग कर देता है । जब सबका मोह समाप्त हो जाता है, तब कृष्ण प्रेम शुरू होता है । उसके पहले तो हम जैसे लोग ढोंग करते हैं, भक्ति नहीं केवल आडम्बर रहता है । प्रेम कहाँ है ? **'आखिर तो यह तन जाएगा'** एक दिन तो शरीर छूटेगा ही, कितना भी इसे दूध पिलाओ, घी खिलाओ, इंजेक्शन लगाओ, विटामिन की गोली खा लो । **'क्यों नहीं प्रभु को अर्पण करते ।'** इस मल-मूत्र के पिण्ड को प्रभु को चढ़ा दो । भोगों में, मल-मूत्र में इसे मत नष्ट करो । इस पिण्ड को भगवान् को अर्पित कर दो । **'जब साथ सभी का छूटेगा'** प्यारी से प्यारी स्त्री चली जायेगी, प्यारा से प्यारा पति चला जाएगा । सभी साथ यहाँ थोड़ी देर में छूटने वाले हैं । हम लोग धोखे में एक-दूसरे का दामन पकड़ते हैं । जो चीज छूट रही है, उसे पकड़ते हैं ।

'जब साथ सभी का छूटेगा, तब इससे क्यों धोखा खाते ।'

लोग एक-दूसरे से कहते हैं कि हम तुम्हारे साथ जनम भर रहेंगे । यह धोखा है । देख रहा है मनुष्य कि सब बिछुड रहे हैं, फिर भी प्रभु को नहीं पकड़ता है । बिछुड़ने वालों को ही पकड़ता है । **'जब सभी वस्तु प्रभु की, तुम इसके क्यों मालिक बनते ।'** मनुष्य कहता है कि यह हमारी property (सम्पत्ति) है, यह हमारा पैसा है । **'नकली चोंगा पहन प्रेम का, प्रेमी का सा क्यों तुम दम भरते ॥'**

जब तक मेरापन है, तब तक प्रेम नहीं होता है । हो ही नहीं सकता, कभी भी नहीं हो सकता । बहुत दूर चले जाते हैं भगवान् । हम किसी संसारी चीज को अपना समझ लेते हैं तो भगवान् दूर हो जाते हैं । यदि हमने समझा कि यह शरीर हमारा है तो भगवान् दूर चले जाते हैं । ये समझा कि इन्द्रियाँ हमारी हैं तो भगवान् दूर चले जायेंगे, सोचा कि स्त्री हमारी है, पति हमारा है, पैसा हमारा है तो भगवान् दूर चले जाते हैं ।

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम् ॥

(श्रीभागवतजी ३/५/४३)

असत् शरीर और असत् घर, झूठा परिवार, झूठा सम्बन्ध, सब कुछ असत् हैं । इसमें मनुष्य मम् बुद्धि कर लेता है, यह मेरा है । अब इसे समझो कि 'देह' का सानुबन्ध क्या है और 'घर' का सानुबन्ध क्या है ? 'देह' का सानुबन्ध है – मेरी बहू, नाती-पोता, गेह (घर) का सानुबन्ध है – मेरी बिल्डिग, मेरा फ्रिज, मेरा कम्बल, मेरा फण्ड आदि किसी वस्तु के साथ की चीजें सानुबन्ध कही जाती हैं ।

देवता लोग अपनी स्तुति में कहते हैं – हे दीनानाथ ! दो प्रकार के सानुबन्ध होते हैं । एक देह का सानुबन्ध होता है और एक गेह का सानुबन्ध होता है । दोनों ही असत् हैं, झूठे हैं । मृत्यु होने पर न स्त्री साथ जायेगी, न बेटा-बेटी साथ जायेंगे, न फ्रिज जाएगा, न कम्बल और मकान-बिल्डिग साथ जायेंगे किन्तु इन असत् वस्तुओं में मनुष्य मम् बुद्धि, मेरापन कर लेता है । यह दुराग्रह अर्थात् दुष्ट आग्रह है । कोई वस्तु तुम्हारी है ही नहीं, तुमने व्यर्थ ही उसे अपना समझ लिया है, जबकि मरने के बाद तुम सिर का एक बाल भी अपने साथ नहीं ले जा सकते, एक भूसा का तिनका भी तुम यहाँ से साथ नहीं ले ले जा सकते हो, फिर भी मनुष्य दुराग्रह करता है कि यह मेरा है, यह मेरा है । अतः यह दुष्ट आग्रह है । तुमने किसी चीज को अपना समझ लिया तो भगवान् से तुम्हारा रिश्ता कट गया, भगवान् दूर चले गये । तुमने भोगों को अपना मान लिया, अब भगवान् क्यों आयेंगे ? यह व्यभिचार है । कहीं भी, किसी को तुमने अपना मान लिया तो भगवान् दूर नहीं, बहुत दूर चले जाते हैं, यद्यपि वे निरन्तर इस देह रूपी पूरी में रह रहे हैं,लेकिन बहुत दूर, अनन्त दूरी तक चले जाते हैं । तुमने संसारी चीजों को अपना माना और भगवान् दूर चले गये । देवता कहते हैं कि हम आपका भजन इसीलिए कर रहे हैं कि असत् वस्तुओं के प्रति हमारा ममत्व (मेरापन) चला जाये । आपके चरणकमलों का भजन हम इसीलिए करते हैं कि हम तो संसार के प्रति आसक्ति और ममता नहीं छोड़ सकते, यदि आप छुड़ा दें तो भले ही छूट जाये – **तुलसिदास यह जीव मोह रजु, जोई बाँधे सोई छोरै ।**

अनेक उपासनाएँ हैं किन्तु हे प्रभो ! यह माया तो तुम्हारी ही है । इसलिए इसे तो जब तुम छुड़ाओगे, तब यह छूटेगी । जीव इसे कैसे छोड़ सकता है ? जीव में शक्ति ही नहीं है । वह बेचारा क्या छोड़ेगा, वह तो अनादिकाल से इस माया में फँसा हुआ है । **'केहि-केहि दीन निहोरे'** वेदों में बन्धन से छूटने के अनेकों उपायों का वर्णन किया गया है । अनेक देवता हैं, अनेक मार्ग जैसे योगमार्ग, ज्ञानमार्ग आदि हैं ।

योगभ्रष्ट साधक दो प्रकार के होते हैं । एक तो संसारी भोगों में फँसकर पथभ्रष्ट हो गया, वह भी योगभ्रष्ट बोला जाता है और दूसरा जो योग, ज्ञान आदि मार्गों में फँसकर शुद्ध भक्ति पथ को छोड़ देता है, वह भी योगभ्रष्ट है । दोनों प्रकार से मनुष्य योगभ्रष्ट होता है । तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेक उपाय हैं किन उपायों को मैं कर सकता हूँ ?

एहि कलिकाल न साधन दूजा । जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – १३०)

कलिकाल में अन्य साधनों को करना सम्भव ही नहीं है । अन्न तक तो माँसभोजी हो गया है । गेहूँ में हड्डियों से बनी खाद दी जाती है । कोई विशुद्ध वस्तु संसार में है कहाँ, सारा संसार अशुद्ध हो गया है । न शुद्ध अन्न है, न शुद्ध व्यक्ति है, न शुद्ध मन्त्र है, न शुद्ध विधि है, न शुद्ध विधान है, इसलिए योग क्या करोगे ? आजकल योग के पीछे भोग छिपा रहता है । कभी भी भोगादि वृत्तियों से योग सिद्ध हो ही नहीं सकता । सबसे सरल मार्ग, जब भक्ति ही नहीं सिद्ध हो रही है तो फिर योग कहाँ से सिद्ध हो जाएगा ?

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि ।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ॥

भगवान् का अनन्य रूप से आश्रय ले लो, इसीलिए तुलसीदासजी ने कहा – **'हैं श्रुति बिदित उपाय सकल सुर'** अनेक देवताओं का वेदों में वर्णन किया गया है । इन्द्रसूक्त, अग्निसूक्त – ये सब वैदिक देवता हैं ।**'केहि केहि दीन निहोरे'** तुलसीदासजी कहते हैं कि किस-किस देवता के पास जाकर निहोरा किया जाये । इन्द्र महाराज ! दया करो । अग्नि महाराज ! दया करो । कहाँ-कहाँ तक जायेंगे ?

तुलसिदास यह जीव मोह रजु जोई बाँधे सोई छोरै ॥

यह मोह का बन्धन तो जब आप छुड़ाओगे, तब छूटेगा । इसीलिए भगवान् ने गीता में कहा –

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ (श्रीगीताजी ७/१४)

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं निश्चित कहता हूँ कि जो प्रभु का आश्रय लेता है, वह अवश्य माया के पार चला जाता है और कोई दूसरा उपाय नहीं है ।

कुम्भनदासजी को भगवान् मिले । भक्त ने भगवान् को देखा और भगवान् ने भक्त को देखा ।

ब्रजभावुकों की जीवनी

कुम्भनदासजी (८/१२/२००९)

कुम्भनदासजी निःस्पृहता की मूर्ति थे । उन्होंने अपने जीवन में कभी भी किसी से कुछ नहीं लिया । १७ (सत्तरह) व्यक्तियों का उनका परिवार था किन्तु उनके घर साग तक नहीं बनता था । टेंटी और झरबेरिया का साग बनता था । वे अनन्य ब्रजनिष्ठ महापुरुष थे । ब्रज के बाहर का द्रव्य उन्होंने कभी नहीं लिया । इन्हें राजा मानसिंह ने देने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु इन्होने कुछ नहीं ग्रहण किया । हम जैसे लोग ब्रजनिष्ठ नहीं हो सकते । कुम्भनदासजी ब्रज के झरबेरिया (छोटे बेर) और टेंटी को खाने वाले, अपने हाथ से खेती करके शुद्ध अन्न प्रभु को भोग लगाने वाले विशुद्ध सन्त थे । इनके लिए श्रीनाथजी दौड़कर आते थे क्योंकि इनकी ऐसी निष्ठा थी । ये कभी ब्रज के बाहर नहीं गये । गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने प्रयत्न किया कि ये मेरे साथ रामत में ब्रज के बाहर चलें किन्तु जतीपुरा से चलने पर इनकी विरह दशा देखकर इनको पूँछरी से ही लौटा दिया । ये भीषण गर्मी के मौसम में दोपहर को बारह बजे श्रीनाथजी के विरह में लताओं में रो रहे थे । गोस्वामीजी की आज्ञा होने पर ये दौड़ते हुए श्रीनाथजी के पास गये और एक पद गाया । ऐसी निष्ठा वाले महापुरुष ब्रज में कुछ समय पहले तक थे । जैसे पण्डित रामकृष्णदास बाबा, जो मेरे गुरुदेव बाबा श्रीप्रियाशरणजी महाराज के भी गुरु थे । वे ब्रजवासियों का पहना हुआ वस्त्र ही पहनते थे । ब्रज के बाहर का वस्त्र वे नहीं ग्रहण करते थे । बाहर के लोग आकर ब्रजवासियों को वस्त्र देते थे तो वे उसे ब्रज रज में रगड़कर, गन्दा करके बार-बार धोते, फिर गन्दा करते और उसी वस्त्र को पण्डित रामकृष्णदास बाबा के पास पहनकर जाते और कहते – 'लो बाबा, इस वस्त्र को ले लो ।' बाबा कहते – 'हाँ, यह वस्त्र मैं ले लूँगा ।' ऐसी ब्रजनिष्ठा अब नहीं है । मेरे गुरुदेव (श्रीप्रियाशरणजीमहाराज) ने मुझे गोवर्धन में ऐसे सन्तों का दर्शन कराया और कहा था कि इन सन्तों को देख लो, आगे भविष्य में ऐसा नमूना फिर नहीं मिलेगा । ऐसी भावना के ही सन्त थे कुम्भनदासजी । श्रीनाथजी ने इनको ब्रज के बाहर नहीं जाने दिया ।

एक बार गोस्वामी विट्ठलनाथजी का जन्म दिवस था, तब कुम्भनदासजी अपने जिन पड्डा-पड़िया से खेती करते थे, उनको बेच दिया । उस द्रव्य से जलेबी का उत्सव किया गया । उन्होंने अपनी जीविका के बारे में भी नहीं सोचा कि कल को हम खेती कैसे करेंगे ?

यदि हम जीविका के बारे में भी सोचते हैं तो हम सच्चे वैष्णव नहीं हैं । माया के पार कैसे जाया जाये, इसका उत्तर भागवत में नौ योगेश्वरों ने दिया है । माया से तो तुम थोड़ी देर में ही पार हो जाओगे ।

इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम् ॥

(श्रीभागवतजी ११/३/२८)

समर्पण ऐसा होवे कि अपनी इष्ट प्यारी से प्यारी वस्तुएँ अथवा जो कुछ दान है अथवा जो कुछ भजन है अथवा जो कुछ जप है, अपनी जीविका है, वह भी भगवान् को समर्पण कर दो । स्त्री, पुत्र, अपना प्राण, वित्तादि सब प्रभु को समर्पित कर दो । सब समर्पित कर दो, कुछ शेष न रहे । इस तरह से माया के पार हो जाओगे । यह केवल एक सिद्धान्त नहीं है, भागवत में कई जगह यह बात कही गयी है –

यद् यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते ॥

(श्रीभागवतजी ११/११/४१)

तुम भगवान् को सब कुछ सौंप दोगे तो वह अनन्त हो जाएगा । ऐसा करते ही मनुष्य माया से पार हो जाता है । इसी बात को भागवत में आगे भी कहा गया है –

मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च ।
इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद् व्रतं तपः ॥ (श्रीभाग.११/१९/२३)

भगवान् कहते हैं कि जो कुछ तुम्हारे पास है, वह मेरे लिए है । अपने भोग का, अपने सुख का परित्याग कर दो । ऐसा भगवान् ने कई बार कहा है । ऐसा नहीं कि पंगत में दस रुपये मिल गये तो हम सोचें कि यह हमारे बाप का है । उसको अपने काम में मत लो । अपने काम में लेना ही पाप है किन्तु ऐसा हो नहीं पाता है । सबसे बड़े दुःख की बात यह है कि हम लोग महापुरुषों का अनुकरण नहीं कर पाते हैं । श्रीरघुनाथदासगोस्वामीजी के बारे में भक्तमाल में नाभाजी ने लिखा है – **'लौन तक्र ब्रज को लियो'**

ब्रज में आकर उन्होंने कभी दूध नहीं पिया, रोटी नहीं खाई, लड्डू-पेड़ा नहीं खाया । केवल ब्रज की छाछ-नमक लिया और कुछ लिया ही नहीं, छुआ ही नहीं । यह निःस्पृहता की पराकाष्ठा है । इसकी कोई सीमा नहीं है । ऐसे महापुरुष किसी से वस्त्र तक नहीं लेते थे । इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसी रहनी का अनुकरण करना चाहिए । यह अनुकरण नहीं है तो बहुत बड़ी कमी है । हम सबमें कमियाँ हैं ।

जब हमारे बाबा (श्रीप्रियाशरणजीमहाराज) जीवित थे तो वे गोवर्धन में ही अधिकतर अपने गुरु आश्रम में रहा करते थे । कभी-कभी वे बरसाना भी आते थे, बरसानावास करते समय वे प्रेमसरोवर पर ही रुका करते थे । एक बार मेरे परिचय की एक श्रद्धालु महिला उनके दर्शन करने के लिए प्रेम सरोवर गयी । श्रीमहाराजजी उस समय प्रेम सरोवर के तट पर किसी लता के नीचे बैठकर भजन कर रहे थे । उस महिला ने उन्हें प्रणाम किया परन्तु महाराजजी उस महिला से कुछ नहीं बोले । उस महिला ने उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए उन्हें कई बार प्रणाम किया किन्तु महाराजजी उससे कुछ भी नहीं बोले । जब वह महिला चली गयी तो उन्होंने मुझसे उसके बारे में पूछा, फिर कहा कि यह महिला कितने सुन्दर वस्त्र पहनकर आई थी, जबकि धाम में अत्यन्त ही सादी वेशभूषा में रहना चाहिए । अरे, वह प्रतिदिन इतने सुन्दर वस्त्र पहनती है तो भजन क्या करेगी ? वह तो रांड़-वेश्या है, जो ब्रज में आकर भी सुन्दर वस्त्र पहनकर लोगों को दिखाना चाहती है । वासना तो छोटी-सी भी हो मनुष्य को गिरा देती है । भगवान् ने कहा है –

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् ।
तस्मन्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥

(श्रीभागवतजी ११/२०/३५)

निरपेक्ष होना, किसी से कुछ नहीं लेना, यह सबसे बड़ा कल्याण है । जो निष्काम है, उसके दरवाजे को भक्ति खटखटाएगी और कहेगी – 'मैं आ गयी हूँ, दरवाजा खोलो ।'

ब्रजनिष्ठ भक्तों ने कहा है कि हम तो ब्रज में भीख माँगकर खायेंगे –

ब्रजवासिन के टूक भूख में, घर-घर छाछ महेरो ।

श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है –

'भालो न खाइए, भालो न पहरिये ।'

न तो अच्छा खाओ और न ही बढ़िया वस्त्र पहनो । उन्होंने रघुनाथदास गोस्वामी से कहा था कि कभी अच्छे वस्त्र मत पहनना । कुम्भनदासजी आदि महापुरुषों ने इन सब बातों का पालन किया । इसीलिए भगवान् उनके पास दौड़-दौड़कर आते थे । हम लोगों को भड़ुआ और वेश्या नहीं बनना चाहिए । मीराजी ने गाया है –

'नहिं भावे थारो देश लोजी रंगरूड़ो ।'

मीराजी ने ससुराल पहुँचने पर अपने पति से कहा था – 'मुझे आपका यह देश अच्छा नहीं लगता है । बड़े-बड़े राजा-महाराजा प्रतिदिन राजमहल में आते हैं, सोने का मुकुट पहनकर राजकुमार आते हैं ।'

थारा देसा में राणा साधु नहीं छे, लोग बसें सब कूड़ो ।

मीराजी ने कहा – 'सोने के मुकुट पहनकर जो ये राजा लोग यहाँ आते हैं, ये मनुष्य नहीं हैं, कूड़ा-करकट हैं, इन संग्रहियों-भोगियों का मुख भी नहीं देखना चाहिए ।'

कोई शान-शौकत करे तो उसे शिक्षा दो, उसकी सहायता क्यों करते हो ? किसी लड़की के पास दो साड़ी हैं, और माँगे तो एक चाँटा लगा दो तथा कहो कि क्या वेश्या बनेगी ?

गहना गाँठी हम सब त्यागा, त्यागो कर रो चूड़ो ।

मीराजी कहती हैं कि मैंने अच्छे वस्त्र पहनना छोड़ दिया, आभूषण पहनना छोड़ दिया । कपड़ों का गट्ठर बाँधकर क्या करोगे, यह तो केवल वेश्याओं और भड़ुओं की जिन्दगी है । मीराजी ने राणाजी से कहा कि मुझे तुम्हारे महल अच्छे नहीं लगते । हम लोग भजन करने निकले हैं, ऐसे में क्रीम-पाउडर लगायें तो वेश्या अथवा भड़ुआ ही तो हैं । ऐसा व्यक्ति भजनानन्दी कैसे बन जाएगा अथवा बन जायेगी ?

काजर टीकी हम सब त्यागा, त्यागो है बाँधन जूड़ो ।
मीराजी ने सभी श्रृंगार और राजसी सुखों का त्याग कर दिया था । इस त्याग का फल क्या मिला ?

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो जी रूढ़ो ।
मीराजी कहती हैं कि मुझे तो श्रेष्ठ वर 'श्रीगिरधर नागर' मिल गये हैं ।

महापुरुष लोग बताते हैं कि किसी से एक फ़ालतू कौपीन (लंगोटी) लेना भी पाप है । कबीरदासजी ने तो यहाँ तक कहाँ है – **'मुखड़ा क्या देखे दर्पण में, तेरे दया धरम नहीं घट में । टेढ़ी-टेढ़ी पाग लपेटे, तेल चुचे जुलफन में ॥'** भजन करने चला है लेकिन बाल सँवारता है, बढ़िया-सी पाग सिर पर बाँधता है । बढ़िया वस्त्र पहनकर, स्वामीजी बनकर तू क्या करेगा ?

गली-गली की राँड़ रिझाई, दाग लगाया तन में ।
भोग भोगता है, इससे कलंक का एक ठप्पा तेरे हृदय में लग गया । हम लोग इतने निर्लज्ज हैं कि महापुरुषों की कठोर वाणी सुनकर भी हमें होश नहीं आता है । कबीरदासजी कहते हैं कि शरीर को सजाना, कोई भवसागर को पार करने का रास्ता नहीं है ।

पाथर की तो नाव बनायी, उतरा चाहै छिन में ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, कायर लड़े न रण में ।

कुम्भनदासजी जैसे महापुरुषों के जीवन में ये बातें थीं, जिनके पास तिलक लगाने के लिए, मुख देखने हेतु शीशा भी नहीं था, उनके घर में बैठने के लिए आसन भी नहीं था । वे ऐसे निःस्पृह महापुरुष थे । इनके पास दौड़-दौड़कर श्रीनाथजी आते थे । कुम्भनदासजी खेती में हल जोतते थे, उसी कमाई का शुद्ध अन्न श्रीनाथजी को भोग लगाते थे । सूखे टिक्कर (रोटी) श्रीनाथजी को अर्पित करके कहते थे – 'आ जा लाला ! भोग लगा' और श्रीनाथजी अपने मन्दिर से दौड़कर इनके पास आते थे ।

राधारानी अथवा श्रीकृष्ण को पाने का यही ढंग है । राधासुधानिधि में कहा गया है –

'दूरादपास्य स्वजनान्सुखमर्थकोटिम्' (श्रीराधासुधानिधि – ३२)

लोग कहते हैं कि हम श्रीजी के रसिक हैं । अरे, तुम रसिक कैसे हो ? राधिकाचरणरेणु की उपासना ऐसे नहीं होती है । सब आसक्तियों को दूर से छोड़ दो । आसक्ति करने का लाइसेन्स किसी को नहीं मिला है । तुम सोचते हो कि हम बड़े श्रीजी के रसिक हो गये हैं । तुम अभी समझे ही नहीं कि श्रीजी का रस क्या है ? पहले सभी सुखों को छोड़ो, अनेक प्रकार के संग्रहों को छोड़ो । अर्थ (पैसे) का संग्रह करने वाला 'राधारानी का रसिक' तो है ही नहीं, वह तो पैसे का रसिक है ।'दूरादपास्य स्वजनान्सुखमर्थकोटिम्' सब साधनों को छोड़ दो । फिर क्या करें ? **सर्वेषु साधनवरेषु चिरं निराशः । वर्षन्तमेव सहजाद्भुतसौख्यधाराम्**
श्रीराधिकाचरणरेणुमहं स्मरामि ॥ 'अलं विषयवार्त्तया नरककोटिबीभत्सया' (रा.सु.नि. - ८३) विषयों भोगों की चर्चा करने से तो नरक अच्छा है । नरक में तो तुम्हारे पापों की धुलाई हो जाती है लेकिन हम लोग यहाँ नरक जाने की तैयारी करते हैं । विषय का भोग तो क्या विषय की वार्त्ता (बातचीत) भी करोड़ों नरक से भी अधिक गन्दी है । इससे तो नरक अच्छा है । इसलिए विषय-त्याग से ही ब्रजभाव मिलेगा ।

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का Account number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA, GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA

Bank – Axis Bank Ltd , A/C – 915010000494364

IFSC – UTIB0001058 BRANCH – KOSI KALAN,

MOB. NO. – 9927916699

निष्किंचन प्रेमी संत श्रीकुम्भनदासजी की ख्याति वृन्दावन के परम रसिकाचार्यों के पास पहुँची । प्राचीनकाल में आजकल की तरह साम्प्रदायिक संकीर्णता नहीं थी । वर्तमानकाल के सम्प्रदायों में तो परस्पर हिन्दू-मुसलमान का-सा भेद हो गया है । इतनी संकीर्णतायें बढ़ गयी हैं कि केवल अपराध है और कुछ नहीं है । केवल अपराध है और रस तो वहाँ न था, न है और न होगा । हर व्यक्ति घुमा-घुमाकर संकीर्णता ही सिखाता है और उसी को अनन्यता बताता है । इस सम्बन्ध में एक सच्ची घटना है कि चन्दन चौबे नामक एक सिद्ध गायक हुए हैं । वे तोड़ी राग को ऐसा गाते थे कि उनकी तोड़ी को सुनने के लिए भारत के प्रसिद्ध संगीत- सम्राट ओंकारनाथ ठाकुर एकबार वृन्दावन आये थे । चन्दन चौबे के पुत्र पालजी भी अच्छे गायक थे । एकबार वह बरसाने में श्रीजी मन्दिर में आये थे, उस समय मेरे गुरुदेव 'श्रीप्रियाशरणजीमहाराज' ने मुझे भी उनका संगीत सुनने के लिए बुलाया था । उस समय मैं नया-नया ही घर से निकला था । पालजी के साथ मथुरा वालों की टीम भी थी । 'वासुदेवजी' नामक गायक की आवाज ऐसी थी कि उनके संगीत से श्रीजी मन्दिर का जगमोहन गूँजने लगा । उस समय बाबा (श्रीप्रियाशरणजीमहाराज) ने मुझसे कहा कि तुम भी कुछ गाओ तो मैंने भी गाया था । मथुरा के ये गायक मेरे गीत को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ।

चन्दन चौबेजी एकबार वृन्दावन में स्वामी हरिदासजी के सम्प्रदाय वालों के आश्रम टटिया स्थान में गये । वहाँ पर किसी ने उनसे कहा कि आप भी कुछ गाइए । उनकी एक बहुत प्रसिद्ध धमार थी । उन्होंने सोचा कि यहाँ तो स्वामी हरिदासजी को सुनाना है, इसलिए इसी होली की धमार को गाया । जैसे ही चन्दन चौबेजी ने अष्टछाप के महापुरुष श्रीनन्ददासजी कृत होली के इस पद का गान किया, उसी समय वहाँ के महन्तजी ने उन्हें रोक दिया और कहा – 'यहाँ तो केवल स्वामी हरिदासजी के ही पद गाये जाते हैं । अन्य सम्प्रदायों की वाणियाँ यहाँ नहीं गाई जाती हैं ।' महन्तजी की बात सुनकर चन्दन चौबेजी ने तुरन्त ही अपना तानपूरा रख दिया और उन्होंने प्रतिज्ञा करी कि 'जब तक मैं जीवित रहूँगा, आज के बाद फिर कभी इस स्थान पर पाँव नहीं रखूँगा, जहाँ इतनी अधिक संकीर्णता है ।' जीवन भर कभी उन्होंने टटिया स्थान में पाँव नहीं रखा । सब जानते हैं कि इस घटना के कुछ समय बाद ही वहाँ के महन्तजी पागल हो गये थे । इसके बाद बहुत दिनों तक निम्बार्क सम्प्रदाय के कृष्णदास अधिकारीजी ने टटिया स्थान को सँभाला । इस प्रकार से अनन्यता को लेकर सम्प्रदायों में अपराध होता है, वहाँ रस की जगह संकीर्णता का प्रवेश हो जाता है ।

वृन्दावन के सभी प्राचीन रसिकाचार्यों ने जब कुम्भनदासजी की ख्याति सुनी तो वे उनसे मिलने आये । उन्होंने सुना कि कुम्भनदासजी के पास तो साक्षात् श्रीनाथजी आते हैं, खेलते हैं और गाते हैं । वे रसिक सन्त उस समय कुम्भनदासजी से मिलने श्रीनाथजी के मन्दिर 'जतीपुरा' नहीं गये बल्कि उनके गाँव 'यमुनावतो' में उनकी झोंपड़ी पर गये । इसी प्रकार कृष्णदासजी की मृत्यु होने पर भी ये रसिक सन्त जैसे स्वामी हरिदासजी, हित हरिवंशजी आदि गोवर्धन आये थे, इसलिए राधाकुण्ड पर उनकी बैठक भी बनी है । एक रात ये सन्त राधाकुण्ड भी रुके थे । जब ये ही रसिक सन्त उनकी झोंपड़ी पर गये, तब कुम्भनदासजी ने खड़े होकर सब सन्तों का सम्मान किया और बोले – 'आप सब सन्त मेरी कुटिया पर पधारे, मैं तो धन्य हो गया ।' उस ज़माने में सभी सम्प्रदायों के सन्तों का कैसा पारस्परिक प्रेम था और अब तो इनमें हिन्दू-मुसलमान जैसा भेद हो गया है ।

कुम्भनदासजी श्रृंगार रस के रसिक थे, इसलिए वे कभी गोकुल-महावन भी नहीं गये, जो वात्सल्य रस का क्षेत्र है । ये श्रृंगार रस के अनन्य उपासक थे । सभी रसिकों ने कुम्भनदासजी से कहा – 'आप कुछ सुनाइए ।'

अष्टाचार्य के सभी सन्त गवैया थे । वृन्दावन के रसिकों के लिए कुम्भनदासजी ने यह पद गाया था –

'कुँवरि राधिका ! तू सकल सौभाग्य सींवा'

कौन कहता है कि राधारानी का मुख चन्द्रमा है, अरे चन्द्रमा धूर है ।

या बदन पर कोटि शत चन्द्र वारौं ।

आपके मुख पर तो कोटि चन्द्रमा भी न्यौछावर करके फेंक देना चाहिए, चाँद क्या श्रीजी के मुख की समानता करेगा ।

लोग श्रीजी के नेत्रों की उपमा हिरन और खंजन पक्षी से करते हैं । ये सब गलत है ।

खंजन कुरंग शत कोटि नैनन ऊपर,
वारने करत जिय में न विचारौं ॥

करोड़ों खंजन, करोड़ों हिरनों को श्रीजी के नैनों पर न्यौछावर करने में मैं कोई संकोच नहीं करता हूँ, अन्य कवियों ने तो खंजन, हिरन की बड़ी प्रशंसा की है परन्तु नहीं, ये सब बेकार हैं । कवि लोग श्रीजी के जंघ प्रदेश (जाँघ) की उपमा कदली (केला) के वृक्ष से करते हैं । ये सब गलत है ।

कदली शत कोटि जंघनि ऊपर,

कवि लोग श्रीजी की कमर की उपमा सिंह से देते हैं, वह भी गलत है ।

सिंह शत कोटि कटि पर जो न्यौछारों ॥

श्रीजी की चाल को गजगामिनी कहकर हाथी से उनकी उपमा कवि लोग देते हैं, ये सब गलत है ।

मत्त गज कोटि शत चाल ऊपर,

हाथी के गण्डस्थल से लोग श्रीजी के स्तनों की उपमा देते हैं । **कुम्भ शत कोटि कुचनि पर वारि डारौं ।**

हाथी के गण्डस्थल से श्रीराधिकारानी के स्तनों की उपमा देना ही व्यर्थ है । कविजन श्रीजी की नासिका की उपमा तोते से देते हैं । **कीर शत कोटि नासा ऊपर,**

कुन्दकलियों से लोग श्रीजी की दशन पंक्ति (दाँतों) की उपमा देते हैं । **कुन्द शत कोटि दशन ऊपर वारौं ॥**

राधारानी के होठों की उपमा कविजन बन्धूक फल से देते हैं, जो बड़ा लाल होता है । अरे, उसकी उपमा क्या देते हो ? **पक्व किन्दूर बन्धूक शत कोटि,**
अधरनि ऊपर वारि रुचि गर्व टारौं ।

रुचि अर्थात् श्रीजी की कान्ति के ऊपर हम सब कुछ न्यौछावर करते हैं । राधारानी की वेणी की तुलना लोग काली लपलपाती नागिन से करते हैं ।

नाग शत कोटि बेनी ऊपर,

श्रीजी की ग्रीवा की उपमा लोग कबूतर से देते हैं ।

कपोत शत कोटि ग्रीव पर वारि दूरि सारौं ॥

राधारानी के चरण और हाथों की तुलना लोग कमल से करते हैं । चरणकमल, करकमल कहते हैं ।

कमल शत कोटि कर जुगल पर वारने,

अरे, इस संसार, इस ब्रह्माण्ड में राधारानी की उपमा नहीं है । **नांहिन कोउ लोक उपमा जु धारौं ।**

अन्त में वे कहते हैं कि अरे, कुम्भनदास बेचारा स्वामिनीजी के रूप का वर्णन क्या करेगा ? आप रसिक लोग मेरे पास आये हैं और मुझसे कहते हैं कि राधारानी की रूपमाधुरी का वर्णन करो, मैं भला क्या वर्णन कर सकता हूँ ?

दास कुम्भन स्वामिनी सुनख शिखि,
अंग अद्भुत सुठान कहाँ लगि सँभारौं ।

कुम्भनदासजी अन्त में बोले – मैं तो श्रीजी के रूप का वर्णन नहीं कर सकता किन्तु एक बात अन्त में कह दूँगा कि श्रीजी के रूप को देखकर मेरे गिरधरलाल क्या कहते हैं (बड़े जोर की पंक्ति 'कड़ी' है) –

लाल गिरिवर-धरन कहत मोहि तौलौं सुख,
जौलों यह रूप छिन-छिन जू निहारौं ॥

गिरिधरन लाल कहते हैं – बस, सुख यही है कि जितनी देर मैं श्रीराधारानी को देखता हूँ, वही सुख 'सुख' है, बाकी सुख 'सुख' नहीं हैं ।

कुम्भनदासजी के गीत को सुनकर सभी रसिक सन्त स्वामी हरिदासजी, श्रीहितहरिवंशजी आदि बहुत प्रसन्न हुए और कुम्भनदासजी की उन्होंने बहुत प्रशंसा की ।

भजौ मन राधे नंद किसोर ।
मात जसोदा पलन झुलावे, हाथों में रेशम डोर ॥
नंदबाबा के आँगन खेलत, घुँघरुन की घनघोर ।
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, बंसी बजावै मुख मोर ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुंडल की छबि ओर ।
'चन्द्रसखी' भजु बालकृष्ण छबि, राधा कृष्ण री जोर ॥

श्रीभक्त-सेवी आराधक 'माधवग्वालजी'

बाबाश्री द्वारा कथित भक्त-चरित्र '३१/१२/२००८' से संकलित

भक्तनि हित भगवंत रची देही माधवग्वाल की ॥
निसिदिन यहै विचार दास जिहि विधि सुख पावैं ।
तिलक दाम सौं प्रीति हृदै अति हरिजन भावैं ॥
परमारथ सों काज हिये स्वारथ नहिं जानैं ।
दसधा मत्त मराल सदा लीला गुण गानैं ॥
आरत हरिगुण सील सम प्रीति रीति प्रतिपाल की ।
भक्तनि हित भगवंत रची देही माधवग्वाल की ॥ १६५॥

श्रीमाधवग्वालजी के बारे में श्रीनाभाजीमहाराज लिखते हैं कि संसार का कल्याण करने के लिए भक्तों का प्राकट्य भगवान् करते हैं । ऐसे संतों पर भगवान् विशेष प्यार करते हैं, जो निःस्पृह निःस्वार्थ भाव से सबको भक्ति का दान देते हैं । संसार का कल्याण के लिए ही वह कथा-कीर्तन करते-रहते हैं । अवतार ही भगवान् का उन्हीं भक्तों के लिए होता है । भागवत में भी भगवान् ने कहा है –

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥
(श्रीभागवतजी १०/२/३१)

ये गर्भ स्तुति है, जब भगवान् जेल में अवतार ले रहे थे तब वहाँ देवताओं सहित ब्रह्मा, शंकर आदि भी गये –

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः । देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥ (श्रीभागवतजी १०/२/२५)

देखो जहाँ पापी लोग बंद होते हैं, उसे जेल खाना कहते हैं । जेलखाना धर्मात्माओं के लिए तो होता नहीं है, यह तो दुष्ट पापियों को दंडित करने के लिए होता है । भगवान् ने जेलखाने में अवतार लिया और जब भगवान् जेल में गये तो वहाँ सब देवताओं सहित ब्रह्मा, शंकर स्तुति करने के लिए आ गये । वहाँ ब्रह्मादि देवताओं द्वारा कथित उस स्तुति को गर्भ-स्तुति कहते हैं । वहाँ भगवान् देवकी के गर्भ से प्रकटे थे तो वहाँ ये श्लोक आता है कि जो सच्चे भक्त होते हैं, जिनके लिए भगवान् अवतार लेते हैं, उनकी पहिचान है, वह पहले तो स्वयं भवसागर से पार हो जाते हैं । जो पार हो जाता है वही दूसरे को पार करेगा, अगर जो स्वयं डूब रहा है तो वह दूसरे को भी डुबा देगा । तो पहले स्वयं जिसको पार करना बहुत कठिन है, ऐसे भवसागर से पार हुए । भवसागर पार होना बहुत कठिन है । उस भवसागर को जो पार हो गये संत लोग, तो चलो भगवद्धाम चलें । तो जो विशेष करुणा वाले संत होते हैं, वे कहते हैं कि नहीं, हम तो पार हो गये बाँकी जो डूब रहे हैं, इनका क्या होगा ? ये गर्भस्तुति का श्लोक बड़ा प्रसिद्ध है । पार होने के बाद अब वे संतजन सोचते हैं कि जो ये हम जैसे लोग विचारे डूब रहे हैं, इनका भी कुछ हित हम कर चलें । तो जैसे कोई पार हो गया तो वह दूसरे को पार होने के लिए नाव छोड़ जाता है कि तुम भी इस नाव पर चढ़कर पार आ जाना । वैसे ही वे संत भगवन्नाम, भगवद्भक्ति, इन सबका प्रचार करके भगवान् के चरण कमलों की नौका को स्थापित करते हैं । इस प्रकार की नाव रखने के बाद तब वह भगवद्धाम को जाते हैं । जिनके हृदय में इतनी करुणा होती है, ऐसे सदनुग्रह संतो पर कृपा करने के लिए आपका अवतार होता है । अपना पेट तो सब भर लेते हैं लेकिन अपने पेट के साथ जब कोई देखता है कि दूसरा भी भूखा है तो स्वयं नहीं खाता दूसरे को खिला देता है, उसको करुणाशील कहा गया । तो करुणा के कारण वे संत भगवद्कथा-कीर्तन करते हैं । कथा-कीर्तन तो हम लोग भी करते हैं लेकिन स्वार्थ से करते हैं, धन मिल जाए, नाम मिल जाए, सम्मान मिल जाए, चेला मिल जाए; लेकिन वे संत हमारी तरह पैसे के लिए भोग के लिए नहीं करते, वह तो सब जीवों के कल्याणार्थ करते हैं । उन संतों के लिए भगवान् का अवतार होता है, वही संत भगवान् के विशेष कृपापात्र होते हैं । संसार के कल्याण के लिए ही ऐसे संतों का अवतार होता है लेकिन माधवग्वालजी ऐसे भक्त थे कि इनके शरीर को भगवान् ने रचा, किसलिए रचा ? भक्तों को सुख देने के लिए । विशिष्ट संत तो वह होते हैं जो संसार में फँसे जीवों को कल्याण का पथ दिखाकर उनका उद्धार करते हैं लेकिन माधवग्वालजी ऐसे भक्त हुए कि भक्तों को सुख मिले, इसलिए इनकी शरीर की रचना ब्रह्माजी ने किया । माधवग्वालजी में यह बड़ी विशेष बात थी कि वह भक्तसेवी थे, इनका शरीर भक्तों की

सेवा के लिए ही था । इसलिए – **'भक्तनि हित भगवंत रची देही माधवग्वाल की ॥'** भक्तों की सेवा के लिए, भक्तों को सुख देने के लिए इनके शरीर की रचना की गयी । ये लक्ष्य जिसका है, वह सबसे बड़ा है । आज एक-दो बालिकाओं ने ऐसा विचार प्रकट किया कि हमको कोठरी की कोई जरूरत नहीं है, हम तो सेवा करतीं हैं और सेवा ही करती रहेंगी । तो ये भाव सुन करके यह प्रसंग याद आ गया और वही प्रसंग आज खुल गया कि जिसका लक्ष्य भक्त-सेवा है, उसको क्या कोठरी, क्या कमरा ? उन बच्चियों के इस उत्तर को सुन करके एक बड़ा आश्चर्य-सा हुआ । ऐसे भक्त को भगवान् ने 'अनिकेत' कहा है –

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥

(श्रीगीताजी १२/१९)

जिसका कोई घर ही नहीं है, मकान ही नहीं है, कोठरी ही नहीं है । वास्तव में क्या कमरा, क्या कोठरी, ये सब अनात्म चीजें हैं । हमने भी कहा कि देखो हमारा भी कोई कमरा नहीं, सब उसी में भरे रहते हैं । 'अनिकेत' रहना चाहिए, कहीं भी आसक्ति नहीं करनी चाहिए । ललित किशोरीजी ने लिखा है, यह एक तरह के राजा थे, राजा से भी ज्यादा पैसा था क्योंकि वह लखनऊ के नवाब थे, लेकिन यहाँ आकर के – **वन वन विहरना बेहतर हमको,**

भवन-महल नही भावे हो ।

कुंजों में पड़े रहेंगे, ऐसा ही उनका जीवन था । टेढ़े खम्बे का मन्दिर उन्होंने ही ठाकुर जी के लिए बनवाया है, खुद अनिकेत भाव से कुंजों में पड़े रहते थे । संसार में कहीं भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए । अपने शरीर में ही नहीं रखना है, तो क्या अकान-मकान । यद्धपि भक्त सेवा बड़ी कठिन है, थोड़ी देर में भाव हो गया, थोड़ी देर में अभाव हो गया, थोड़ी देर में उदास हो गये, ये सब कमियाँ हैं लेकिन फिर भी किसी का ऐसा लक्ष्य है तो, वह तो बड़ा धन्य है । अपने भजन से ही तुम क्या कर लोगे । माधवग्वालजी का जो शरीर था, उसको भगवान् ने भक्तो के लिए बनाया था कि भक्तों को सुख मिले । भक्तों को अगर सुख मिल गया तो करोड़ों गुणा भगवान् की सेवा से भी ज्यादा सेवा हो गयी । तो – **भक्तनि हित भगवंत रची देही माधवग्वाल की ॥** ऐसा है कि सेवा में भाव बड़ा कठिन होता है । जिसमे 'अहं' नहीं होता है, वही सेवा करता है और वही सबसे बड़ा है –

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - १२०)

भगवान् की सेवा करने वाला भगवान् का भक्त नहीं है, भगवान् के भक्तों की सेवा करने वाला भगवान् का भक्त है । यह सैकड़ों जगह लिखा है, भागवत में भी लिखा है । हम अपने पास ठाकुरजी को भोग लगा रहे हैं, पूजा कर रहे हैं; वह असली पूजा नहीं है । असली पूजा तो –

आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ।
मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥

(श्रीभागवतजी ११/१९/२१)

भक्तों की सेवा में भाव रखना कठिन है । भगवान् को तो घंटी हिला दिया, भगवान् न बोलता है, न चलता है, न उठता है, न बैठता है । भक्त तो बिगड़ भी जाता है, साग नहीं दिया, वैसे ही परोस दिया । भक्त फटकार भी लगा देगा, मूर्ति तो फटकार नहीं लगायेगी । उसे तो चाहे जिधर लुढकाओ, चाहे जो हो वह खिला दो । इसलिए भगवान् ने कहा है – **'मद्भक्तपूजाभ्यधिका'** हमारे भक्त की पूजा हमसे बड़ी है । ऐसा जो सोचता भी है, अगर करने में लड़खड़ाहट हो गयी क्योंकि आदमी करते-करते हुए ऊब भी जाता है लेकिन ऐसा सोचना वाला भी धन्य है, धन्य है, धन्य है । इसलिए यहाँ पर नाभाजी कहते हैं कि भक्तों को सुख देने के लिए इनकी देह की रचना की गयी । इतने बड़े ये भावुक थे । इनकी क्या विशेषता थी ? हम लोग तो सोचते हैं कि हमको अच्छा कपड़ा मिल जाये, ये मिल जाये, वो मिल जाये, अच्छा कमरा मिल जाये, लेकिन ये सोचते थे – **'निसिदिन यहै विचार दास जिहि विधि सुख पावैं ।'**

किस तरह से भक्त लोगों को सुख मिले, हर समय यही बात सोचते रहते थे । द्रोपदी जी के बारे में लिखा है कि १०००० स्नातकों को रोज भोजन कराने के बाद, सब महल के दास-दासियों को खिलाने के बाद, पाण्डवों को खिलाने के बाद, जब वह भोजन करतीं थीं । इसलिए उनकी साड़ी, अधोअंग का वस्त्र भगवान् बने । इसलिए जो कोई सोचता है कि हमें तो सेवा ही करना है, कमरा से क्या मतलब, वह बहुत ऊँचा है लेकिन ऐसा एक क्षण में विचार बदलना नहीं चाहिए ।

उदाहरण के द्वारा समझा रहे हैं, तब तुम्हें समझ में आयेगा कि सेवा क्या है ? दुर्वासाजी एक बार दुर्योधन के यहाँ गये, ये बड़े क्रोधी भी हैं और जिसको श्राप दे देते हैं तो वह टलता भी नहीं है । यदुवंशियों को श्राप दे दिया, यदुवंश नष्ट हो गया । तो दुर्योधन ने ऐसी सेवा किया कि दुर्वासाजी प्रसन्न हो गये और बोले माँग, क्या माँगता है ? वह बोला जैसे आपने हमसे सेवा लिया, वैसी पांडवों से भी सेवा ले लो, विचारे जंगल में पड़े हैं । दुर्वासाजी बड़े खुश भये, इसके मन में ईर्ष्या-द्वेष है ही नहीं । उन लोगों का भी यह तो कल्याण चाहता है, यह तो बहुत ऊँचा निकला । दुर्वासाजी को पता नहीं था लेकिन मामला कुछ गड़बड़ था । दुर्योधन ने सोचा था कि वहाँ जायेंगें और आतिथ्य नहीं मिलेगा तो क्रोधी हैं, श्राप दे देंगें, पाण्डव तो वैसे ही मर जायेगें । दुर्वासाजी – 'ठीक है हम जायेंगे ।' दुर्योधन – 'लेकिन एक बात है गुरुदेव ! सबसे पीछे विचारी द्रोपदी खाती है, आपके पास तो १०००० चेला हैं, द्रोपदी भोजन कर ले तब आप जाओ, वह विचारी भूखी न रह जाए क्योंकि दुर्योधन जानता था कि सूर्य देवता द्वारा दी गयी बटलोई है, कितने भी अतिथी आओ सब को भोजन खिला देती थी, १०००० आ जाओ, २०००० आ जाओ, तब तक सभी को खूब भोजन खिलती थी और जब द्रोपदी खा लेती थी तब कुछ नहीं निकलता था । दुर्योधन इसलिए बड़ा कुढ़ता था, हम तो राजा होकर के इतना नहीं कर पाते, न चूल्हा, न आटा, न कुछ केवल द्रोपदी बटलोई के सामने खडी होकर के बोल देती हैं भगवान् इतने अतिथी आ गये हैं, तो उस बटलोई में से ५६ भोग निकल रहे हैं । तो उसने सोचा कि दुर्योधन के १०००० शिष्य साथ रहते ही हैं, जब द्रोपदी भोजन कर ले, तब जाएँ, फिर मजा आयेगा । बाद में कुछ नहीं निकलेगा बटलोई में से, तो फिर श्राप दे देंगे तो वह सब मर जायेगें । उसने इसलिए इस हिसाब से कहा कि द्रोपदी भोजन कर ले, तब आप जाएँ । अब वह गये जंगल में, अपने शिष्यों से कह दिया कि दूर से देखना, जब द्रोपदी भोजन कर ले तब हमको बताना । शिष्य दूर से पेड़ पर से देखते रहे, जब सब पा चुके, कोई नहीं था । द्रोपदीजी ने कहा कि कोई भी अतिथि हो वह आ जाये, पाँचों पाण्डव भी आवाज लगाते थे । जब सब बहुत जोर-जोर से बुलाते थे तो जब कोई नहीं बोलता था, तो पाण्डव कहते थे कि पांचाली अब तुम भोजन कर लो । तो पांचाली भोजन कर लेती थी । अब दुर्वासाजी दूर रुके थे, यद्यपि दुर्योधन को वचन दे आये थे कि वह जब भोजन कर लेगी तभी हम जायेंगे । जब पेड़ पर से देखने वाले चेले ने देखा कि द्रोपदी ने भोजन कर लिया, तो झट गुरुदेव के पास जाकर बोला – 'गुरुदेव ! द्रोपदी भोजन कर चुकी है, अब आप चलो ।' दुर्वासाजी वहाँ पर गये और बोले – 'नारायण ! हरि !!' द्रोपदीजी ने देखा अरे ! ये तो महर्षि दुर्वासा हैं, कहना पड़ा कि प्रभो आतिथ्य स्वीकार करो । दुर्वासाजी बोले, हाँ हम भोजन करेंगे पहले संध्या का समय है, हम संध्या वन्दन कर आवें, तब आकर के भोजन करेंगे । दुर्वासाजी अपने शिष्यों सहित स्नान करने चले गये और इधर द्रोपदी रोते हुए गोविन्द की टेर लगाने लगीं – **'यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णां मां दूरवासिनम् ।'** जब साड़ी खींची जा रही थी जब भी उन्होंने चिल्ला करके 'गोविन्द' कहा था ।

५५ साल पुरानी बात है, हम जब घर से आये थे, तब राधाकुण्ड के किनारे ऐसे ही बैठे रहते थे, कोई कम्बल नहीं था, वह असली जिन्दगी थी । वहाँ संध्या के समय कोई लडकी अपने भाई को बुला रही थी – 'गोविंदा ऽ ऽ ऽ ऽ गोविंदा ऽ ऽ ऽ ऽ' ये उच्च स्वर में आवाज सुनकर इन्हीं शब्दों में हमने एक कीर्तन बनाया था, यही स्वर था, ये कीर्तन वहीं बना था, ये कीर्तन ५५ साल पुराना है – **गोविंदा ऽ ऽ ऽ ऽ गोविंदा ऽ ऽ जय राधे-राधे गोविंदा ।**
जय-जय मुरली वारे प्यारे, जय-जय वंशी वारे प्यारे ।
गोविंदा ऽ ऽ ऽ ऽ.....
जय-जय भानुदुलारी प्यारे, जय-जय रूप उजारी प्यारे ।
गोविंदा ऽ ऽ ऽ ऽ.....
द्रोपदी 'गोविन्द' को बुलाती थीं, ये उनका प्रिय नाम था । महाभारत में आया है – **गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ।**

कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥
हे नाथ ! हे रमानाथ ! ब्रजनाथार्तिनाशन् ।
कौरवार्णव मग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ॥

तो उन्होंने 'गोविन्द !' की आवाज लगायी कि अब तो दुर्वासा श्राप दे देंगे और फिर आज हम लोग मर जायेंगे ।

तो वह आवाज ऐसी थी जब 'गोविन्द' विकलता से बुलातीं थीं, तो गोविन्द दौड़ पड़ते थे । उस जंगल में वह आवाज जो उनकी निकली...., उस जंगल में कोई साधन तो था नहीं, वहाँ तो केवल एक बटलोई थी । बटलोई को तो माँज के रख दिया था । तो वह क्या देखतीं हैं कि गोविन्द दौड़ते चले आ रहे हैं, आकर के झोपड़ी में घुसे और बोले – 'अरे कृष्णा ! (द्रोपदी) ।' द्रोपदी – 'मैं तो तुम्हें याद कर रही थी क्योंकि गोविन्द मैं बड़ी आपत्ति में हूँ ।' श्रीकृष्ण – 'अरे आपत्ति चूल्हे में गयी, पहले तो हमको भोजन करा, हम भूखे हैं ।' द्रोपदी बोली – 'गोविन्द ! इसलिए ही तुमको मैनें भोजन के लिए बुलाया है ।' कृष्ण भगवान् – 'अरे, भूख के मारे मरे जा रहे हैं, कुछ ला दे ।' द्रोपदी – 'कुछ भी नहीं है, हमने बटलोई को माँज दिया है ।' कृष्ण भगवान् – 'झूठ बोलती है, बटलोई ला, कुछ न कुछ तो होगा ही ।' द्रोपदीजी बटलोई लेकर के आ गयीं । ठाकुरजी बोले – 'देख, इसमें एक शाक का तिनका लगा हुआ है ।' ठाकुरजी ने एक शाक का पत्ता लेकर के कहा कि विश्व तृप्त हो जाए, ऐसा कहकर के खा गए । अब जितने भी संसार के चर, अचर प्राणी थे, सबके पेट भर गये और दुर्वासाजी के १०००० चेला जो स्नान कर रहे थे जंगल में, उनके तो ऐसे भरे कि डकार में दोनों ही स्वर चलने लग गये । दुर्वासाजी की बुरी हालत हो गई । दुर्वासाजी बोले कि अरे भाई ! पाण्डवों ने हमारे लिए प्रसाद बना करके रखा हुआ होगा, वह बिगड़ेगा, तो भक्तापराध लगेगा । एक भक्त अम्बरीष के अपराध से ही मुश्किल से बचे, आज हम मारे गये । 'ठाकुरजी' भीम, अर्जुन से बोले कि दुर्वासाजी भोजन के लिए कह गये हैं, उनको बुला लाओ । भीम बोले कि क्या बुला लावें, यहाँ तो कुछ है ही नहीं । ठाकुरजी फिर बोले कि बुला लाओ, तो अर्जुन बोले कि जो कृष्ण कहते हैं वही करो, किन्तु-परन्तु मत करो । तो जब भीम और अर्जुन उनको बुलाने के लिए के वहाँ पर गये तो वे १०००० चेला सहित दुर्वासाजी भगे जा रहे हैं कि भाग चलो भैया, अभी भीम, अर्जुन बुलाने के लिए आयेंगे, वैसे ही हमारी हालत खराब है, किसी-किसी की तो धोती ही बिगड़ गयी । भीम ने देखा कि दौड़े जा रहे हैं, तो बोले कि अरे दंडवत गुरुदेव ! दंडवत ... वह रुकें ही नहीं । 'अरे महाराज ! कहाँ जा रहो' ऐसा कहते हुए भीमसेन ने चरण पकड़ लिए । अरे भाई भीम ! अब हम लोग नहीं खा सकते क्षमा करो, क्योंकि हमारी बुरी हालत है । सभी चेला बोले कि गुरुदेव ! बुरी हालत है, हमारे दोनों ही स्वर चल रहे हैं । भीम बोले कि महाराज ! सब हमारा माल बिगड़ जायेगा, गर्म-गर्म जलेबी ठंडी हो जायेंगीं । दुर्वासाजी बोले कि भाई कुछ माँग लो । भीम बोला – 'हम क्या माँगें, तुम्हें जो देना हो सो दो ।' दुर्वासाजी कहने लगे कि अरे, हम दुर्योधन के चक्कर में आ गये कि द्रोपदी जब खा लेगी तभी जाना । उनका सभी का नाश हो जायेगा ।

जो तोकों काँटा बुवे, ताहि बुवे तू फूल ।
तोहि फूल को फूल है, वाको है त्रिसूल ॥

द्रोपदी सभी को खिलाने के बाद आखिर में भोजन करती थी, इसका नाम 'सेवा' है । यहाँ हमलोग सेवा करने के लिए जायेंगे तो पहले अपने लिए रख लो, अगर माल बीत जायेगा तो फिर क्या खायेंगे ? इसको 'सेवा' नहीं कहते । 'श्रीमाधवग्वालजी' सच्चाई से भावपूर्वक भक्तों की सेवा करते थे । भक्तों को सुख देने के लिए ही भगवान् ने 'माधवग्वाल' का शरीर रचा था । वह हर समय ऐसी बात में रहते थे कि कैसे भक्तों को सुख मिले ? इसका नाम 'सेवा' है । **'निसिदिन यहै विचार दास जिहि विधि सुख पावैं ।'** सुख तभी मिलता है जब तुम उसके लिए कुछ कष्ट सहोगे, अपने स्वार्थ का त्याग करोगे । **'तिलक दाम सौं प्रीति हृदै अति हरिजन भावैं ।'** कोई भक्त आ गया तो जैसे कामी 'कामिनी' को देखकर के खुश हो जाता है, वैसे ही इन्हें 'भक्त' भाते थे । 'परमारथ सों काज हिये स्वारथ नहिं जानैं ।' उनका सेवा के पीछे ये नहीं था कि भाई हमें ये मिल जायेगा, वह मिल जायेगा, सम्मान मिल जायेगा; ये सब झगड़ा नहीं था । सेवा तो वही है, जहाँ कोई स्वार्थ नहीं है और सेवा करते हुए **'दसधा मत्त मराल सदा लीला गुण गानैं ।'** हर समय गोविन्द का गुण गाते रहते थे । दसधा भक्ति माने प्रेम लक्षणा भक्ति, ९ भक्ति तो हैं ही । सदा आर्त भाव से रहते थे, दीन भाव से । **'आरत हरिगुण सील सम प्रीति रीति प्रतिपाल की ।'** हर समय भगवान् के गुण गाते रहते थे, शीलवान् थे । शीलवान् के अंदर तीन गुण होते हैं, जैसे नीबू की शिकंजी बनती हैं, नीबू, मीठा और पानी । वैसे ही

शील भी तीन गुणों से बनता है - अद्रोह, दया और दान । कोई आदमी गाली दे रहा है, उससे भी तुम द्रोह नहीं करो, उसके ऊपर दया करो और उसकी जाकर के सेवा करो । तो शील गुण आ गया । ये नहीं कि उसने मुँह फुलाया, तो तुमने भी फुला लिया । ये शीलगुण आना भी बड़ा कठिन है, करीब-करीब असम्भव है । ये बात असम्भव इसलिए है कि दूसरे के द्रोह का प्रभाव मन पर अवश्य पड़ जाता है, इसलिए शील गुण असम्भव है लेकिन भक्तों में शीलगुण होता है श्रीमीराजी ने कहा – **बाला मैं वैरागिन हूँगी ।**

सील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी ॥

उनको जहर दिया गया लेकिन उन्होंने किसी से द्रोह नहीं किया । प्रीति की रीति का पालन किया, हमलोग प्रेम जानते ही नहीं हैं तो प्रीति की रीति का क्या पालन करेंगे ? प्रेम करना आसान है लेकिन उसका निर्वाह असम्भव है, भगवान् कृपा कर दें तो दूसरी बात है । श्रीमाधवग्वालजी के चरित्र की एक घटना भी सुना देते हैं, ये बाबाजी नहीं थे, ग्रहस्थ थे, भक्तमाल में ज्यादातर ग्रहस्थ भक्त हैं । इसलिए जो लोग समझते हैं कि साधु ही भजन कर सकता है, यह गलत समझते हैं । परिवार के बोझ को लेकर भी जो चलता है, सेवा करता है, वह धन्य है । एकबार की बात है, इनके यहाँ एक साधु आया, उसने कहा हमको अपने गुरु का उत्सव करना है, उसके लिए हमें कुछ सामग्री और धन चाहिए । इन्होंने कहा ठीक है हम प्रयास करते हैं, गाँव में सब लोगों से कहा कि सब लोग थोड़ा-थोड़ा दे दो तो इनके गुरुदेव का उत्सव हो जायेगा । किसी ने कुछ नहीं दिया क्योंकि वैसे भी भक्त लोगों से ज्यादातर लोग चिढ़ा करते हैं, एक नियम होता है, दैवीय जीव से आसुरी जीव चिढ़ते हैं । निराश लौट आये, उस साधु को भी लेकर के गाँव में गये थे । उनकी बेटी का विवाह होने वाला था तो उन्होंने उस साधु से कहा कि जा सब सामान ले जा ..... (और बरात आने वाली है ! कितना बड़ा खतरा !!) भक्त लोग असंग रहते हैं, लेकिन संसार में असंग भाव से रहना बहुत कठिन है । मुशीबत आ जाये, अपमान हो जाये, तिरस्कार हो जाये कुछ परवाह नहीं । भक्त वही होता है जो भगवान् ने कहा है – **त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन । निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥** (श्रीगीताजी - २/४५) योगक्षेम के बारे में कुछ सोचता ही नहीं, कल क्या होगा ? यह सब सोचना ही गलत है । अगर सोचता है तो भक्त नहीं है । भक्त वेपरवाह रहता है, क्या होगा यह सब कुछ नहीं सोचता – **"वर्षा ऋतु की उमगी नदिया कितना भी रोको रुकती नहीं । कितना भी खेओ नौका को पानी बिन थल में तिरती नहीं ॥ कामी के पीछा करने से सत नारी सत से हटती नहीं । जब प्राण भये मनमोहन के फिर कभी किसी की चलती नहीं ॥"** न लोक की चलती, न समाज की चलती, वेपरवाह हो जाता है उसको भक्त कहते हैं – **मनमोहन से है प्यार जिसे उसे गाली की परवाह नहीं । जब युद्ध क्षेत्र में वीर खड़ा उसे जीने की परवाह नहीं ॥ जब सत में सती चली जलने उसे जलने की परवाह नहीं । जो विरह बाण से मर ही चुके उन्हें मरने की परवाह नहीं ॥** भगवान् ने कहा कि ऐसे भक्त वेद से ऊपर उठ जाते हैं । कहाँ मान, कहाँ अपमान, कहाँ सुख, कहाँ दुःख । योगक्षेम कुछ नहीं सोचना, उसका नाम भक्त है । ऐसे ही थे यह 'माधवग्वालजी' । अब उनकी कन्या का विवाह है, बरात आने वाली है, लेकिन सब उन्होंने ले जाकर के उन संतजी से कहा – 'ले जाओ ।' वह संत ले जाने लगे तो इनकी स्त्री को बड़ा दुःख हुआ । कैसा नासमझ पति है, कन्या का विवाह है, कितने लोग आयेंगे, वे क्या खायेंगे, क्या पियेंगे? नातेदार आते हैं, रिश्तेदार आते हैं, विवाह में कितना अपमान होगा और यह क्या करेगा ? यद्यपि वह भी भक्त ही थीं परन्तु भैया ! लुढ़क जाना बड़ा आसान है, लुढ़क गयी बिचारी और रोष हो गया । अपनी लड़की के लिए भी इसको चिन्ता नहीं और आकर के बोली कि आपने सामान विवाह का क्यों दे दिया ? ये चुप बैठे रहे, सुनी अनसुनी कर दिया और बोले जो 'गोविन्द' करता है वही होगा । हमारे भाग्य में अगर जूता ही लिखा है तो जूता ही खायेंगे, अपमान होगा, अपमान सह लेंगे । देवी ! कोई गोविन्द का भक्त माँगने आया तो क्या करता, मैं तो गोविन्द पर सब कुछ चढ़ा चुका हूँ । संसार गाली दे लेगा, अपमान कर देगा और क्या करेगा कोई, इससे ज्यादा क्या कोई कर सकता है ? तो वह गुस्से में भण्डार-गृह में गयी कि देखें तो सब कुछ ले गया है कि कुछ छोड़ भी गया है । जब गुस्से में

भीतर घुसी तो देखा कि सब सामान पहले से ज्यादा भरा पड़ा है । दौड़ के आयी और इनके चरणों में गिर पड़ी, बोली कि हमसे बड़ा अपराध हुआ जो मैंने शंका की, क्योंकि स्त्री तो हूँ ही, आपने अपने प्रभु पर इतना विश्वास किया, आप धन्य हैं । उसे बड़ी ग्लानि हुई, पश्चाताप हुआ, उस दिन से उनकी स्त्री भी और निष्ठावान् हो गयी । इस प्रकार से श्रीमाधवग्वालजी भक्त हुए और इनके विशेष बात यही थी कि भगवान् ने इनकी रचना भक्तों की सेवा के लिए किया था ।

अक्षम्य 'भक्तापराध'

बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग (३/३/२०११) से संकलित

देवगुरु बृहस्पति ने इन्द्र से कहा –

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहिं न काहू ॥

भगवान् के प्रति कितना भी अपराध कर लो, वे क्रोध नहीं करेंगे क्योंकि वे अनन्त दया के सागर हैं । अन्य भी दुष्कर्म कर लो तो वे क्षमा कर देते हैं ।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

(श्रीगीताजी ९/३०)

दुराचार आदि छोटे-मोटे पाप हैं । भगवान् इस तरह के पापों को क्षमा कर देते हैं । दुराचार नहीं, सुदुराचार ही क्यों न हो, उसे भगवान् क्षमा कर देते हैं लेकिन भक्तापराध क्षमा नहीं होता है । इसके कारण निश्चित ही पतन हो जाता है ।

राम भगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥

इसमें विशेष बात ये है कि हम भक्तापराध न करें ।

जो अपराधु भगत कर करई । राम रोष पावक सो जरई ॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - २१८) भक्तापराध करने वाले को भगवान् की क्रोधाग्नि जला देती है । दुर्वासा शंकरजी के अवतार हैं । इससे अधिक उदाहरण और क्या हो सकता है ?

लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा । यह महिमा जानहिं दुरबासा ॥

लोक में ही नहीं वेद में भी यह बात है । यदि मनुष्य भक्ति चाहता है अथवा परमार्थ चाहता है अथवा भवसागर पार करना चाहता है तो केवल भक्तापराध से बच जाए । अन्य सभी अपराध क्षमा हो जाते हैं किन्तु भक्तापराध क्षमा नहीं होता है । जो भक्त 'भक्ति' प्राप्त करना चाहता है अथवा परमार्थ को जानना चाहता है, उसको यह ध्यान रखना पड़ेगा । साधारण जनता की तरह भक्त के साथ व्यवहार नहीं करना चाहिए । भक्त भगवान् से बड़ा होता है । ये बात यदि याद रहेगी, तभी भक्ति मिलेगी ।

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥

इन्द्र से देवगुरु बृहस्पति ने कहा – 'इन्द्र ! तुम भक्तापराध मत करो, नहीं तो नष्ट हो जाओगे । तुमने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के साथ दुराचार किया, उसे भगवान् ने सहन कर लिया ।

दूसरा उदाहरण है वैकुण्ठ में भगवान् के प्रिय पार्षद जय-विजय का, इन्होंने भक्तापराध किया, जिसके फलस्वरूप इन्हें तीन जन्मों में हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु, रावण-कुम्भकर्ण और शिशुपाल-दन्तवक्र बनना पड़ा क्योंकि उनका भक्तों में अभाव हो गया था । भागवत में इसका प्रमाण है जब सनकादिक मुनियों ने वैकुण्ठ में जय -विजय को शाप दिया था । इस श्लोक में महत्वपूर्ण बात कही गयी है कि भक्तों में अभाव हमें वैकुण्ठ से भी नीचे फेंक देगा । लोग प्रायः पैसे की चोरी व पर-स्त्रीगमन आदि पापों को ही बड़ा समझते हैं लेकिन वे भक्तापराध के बारे में नहीं सोच पाते हैं, इसीलिए किसी को भक्ति नहीं मिलती है । सनकादिक ने जय-विजय से कहा –

तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् । (श्रीभागवतजी ३/१५/२४)

परमपुरुष भगवान् जो सर्वशक्तिमान है, जो विकुण्ठभर्तु (वैकुण्ठनाथ) हैं, तुम दोनों उनके प्रिय हो, कर्तुं प्रकृष्टम् – हम तुम्हारा प्रिय करना चाहते हैं । हम तुमको शाप नहीं दे रहे हैं, तुम्हारा प्रिय (भला) करने के लिए हम कुछ कह रहे हैं, 'धीमहि मन्दधीभ्याम्' – तुम्हारी बुद्धि मन्द है । जय-विजय ने पूछा – 'क्या कह रहे हैं आप ?' सनकादिक बोले – 'वैकुण्ठ से तुम लोग नीचे संसार में चले जाओ ।' जय-विजय – 'अब यह तो बहुत बड़ा दण्ड है, क्या यह प्रिय है ?' सनकादिक – 'हाँ, प्रिय है क्योंकि तुम्हारे भीतर अभाव पैदा हो गया है, इसलिए तुम यहाँ जितने भी दिन रहोगे तो केवल अभाव ही अभाव से भरे रहकर पाप करोगे, और अधिक

भक्तापराध करोगे, अतः यहाँ से चले जाओ ।' 'प्रकृष्टम्' का अर्थ है कि तुम्हारा भला हम कर रहे हैं ।

जिसका अभाव हो जाता है तो फिर वह अपराध ही अपराध करता है और जब भाव होता है तो भक्ति ही भक्ति मिलती है । यदि भगवद्भक्त में भाव नहीं है तो कुछ नहीं मिलना है । इसीलिए सनकादिकों ने जय-विजय से कहा – 'लोकानितो व्रजत' – इतो माने इस वैकुण्ठ से 'व्रजत' माने चले जाओ, कहाँ ? लोकान् - संसार में, क्यों ? 'व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या' - अन्तर अभाव दृष्ट्या – यह महत्वपूर्ण शब्द है । 'अन्तः' माने तुम्हारे भीतर, तुम्हारी अभाव दृष्टि हो गई है । ये अभाव जब हो जाता है तो फिर जीव के हृदय में काम-क्रोध आदि विकार पैदा हो जाते हैं । भाव गया, अभाव आया तो अभाव में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि उत्पन्न हो जायेंगे, नहीं तो भक्त के हृदय में काम आदि विकार उत्पन्न नहीं हो सकते हैं । भक्ति महारानी एक ऐसी शक्ति है कि यदि उर्वशी भी आ जाये तो तुम्हें गिरा नहीं सकती । काम-क्रोध कभी भी तुम्हारे हृदय में झाँक नहीं सकते हैं । सनत्कुमारों ने जय-विजय से कहा कि तुम्हारे भीतर अभाव दृष्टि हो गयी है – अन्तःअभावदृष्ट्या । इसलिये वहाँ जाओ, जहाँ काम-क्रोध-लोभ आदि विकार रहते हैं, 'पापीयसः त्रय' – ये तीन पापी काम, क्रोध और लोभ जहाँ रहते हैं ।

ये बात हर बच्चे को सिखानी चाहिए, ऐसा सिखाने पर वह कभी भक्तापराध नहीं करेगा । पापीयसः त्रय – तीन पापी हैं, ये मनुष्य के शत्रु हैं । ये तीन पापी कौन हैं, इनके बारे में भगवान् ने गीता में बताया है –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

(श्रीगीताजी - १६/२१)

काम, क्रोध तथा लोभ – ये तीन नरक के द्वार हैं, ये मनुष्य को सीधे नरक को ले जाते हैं, बीच में रुकने की कोई जगह नहीं है । इसलिए इन तीनों को छोड़ दो ।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥

(श्रीगीताजी -१६/२२)

ये तम (अंधकार-नरक) के दरवाजे हैं, इनको छोड़कर जब मनुष्य भजन करता है तब फिर परम श्रेय अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता है । काम, क्रोध, लोभादि नरक के द्वारों को छोड़कर फिर जब वह श्रेय अर्थात् आत्मकल्याण के लिए प्रयास करता है, ततो याति परां गतिम् – तब वह परम गति को प्राप्त हो जाता है । इस शास्त्र विधि को जो नहीं मानता है, उसे कभी भी सिद्धि नहीं मिलेगी ।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥

(श्रीगीताजी - १६/२३)

उस मनुष्य को कभी भी सिद्धि नहीं मिलेगी, चाहे वह कितनी ही माला फेर ले, कितना ही साधन कर ले, कभी भी सिद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती, यही कारण है कि आज हमारे साधु-वैष्णव समाज में फूट, संकीर्णता, भोग, साम्प्रदायिकता, मेरा-तेरा आदि अधिक हैं, जबकि हमारे समाज में ये अवगुण नहीं होने चाहिए । इसका कारण यही है कि हम लोग भक्तापराध पर ध्यान नहीं देते हैं । एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से चिढ़ता है, एक भक्त दूसरे से चिढ़ता है । इसके कारण चारों ओर भोग का नंगा नाच हो रहा है, अर्थ (पैसे) का नंगा नाच हो रहा है । इसका कारण यही है जैसा कि भागवत के पूर्वोक्त श्लोक (३/१५/२४) में कहा गया है कि भक्तों के प्रति अभाव दृष्टि है, इसलिए पापीयसस्त्रय – जो भक्तापराधी है, ये तीनों विकार काम, क्रोध और लोभ उसके ऊपर हमला करते हैं और पटक देते हैं । हमारे मन में काम क्यों उत्पन्न होता है ? दिन-रात हम लोग माला फेरते हैं, फिर भी काम क्यों उत्पन्न होता है ? भक्तापराध के कारण ऐसा होता है । काम-क्रोध आदि विकार भजन करने वाले साधक के मन में भी क्यों उत्पन्न होते हैं, श्लोक ३/१५/२४ इसका बहुत बड़ा प्रमाण है । हम लोग तो छोटे से मक्खी-मच्छर के समान हैं, वैकुण्ठ लोक में भी यदि कोई पहुँच जाए किन्तु भक्तापराध के कारण उसे वहाँ से भी नीचे मृत्युलोक में पटक दिया जाएगा । भक्तापराध के कारण कामवासना तुमको कभी भी नहीं छोड़ेगी, मृत्यु के समय तक नहीं छोड़ेगी, क्रोध मरते समय तक भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगा, अन्तिम समय तक तुम क्रोध से जलते रहोगे, इसी प्रकार लोभ भी कभी नहीं

छोड़ेगा और हमारे साधु-वैष्णव समाज में यही हो रहा है, चारों तरफ यही दिखायी पड़ रहा है । इसीलिए इस श्लोक की चर्चा की गयी क्योंकि इसमें अत्यधिक महत्वपूर्ण तथ्य पर प्रकाश डाला गया है ।

वैष्णव-भक्त में यदि कोई कमी भी है तो भी साधारण व्यक्तियों की तरह उसकी निन्दा व तिरस्कार नहीं करना चाहिए क्योंकि भक्त एक बहुत बड़ी authority (विशेषाधिकार प्राप्त जन) है । उसकी कमी को ठीक से, मधुरता (मिठास) से हमको दूर करना चाहिए । ब्रह्माजी एक बार कैलाश पर्वत पर गये तो वहाँ उन्होंने देखा कि गरुड़जी अपनी जाति की मादा पक्षियों के साथ विहार कर रहे थे, यह देखकर ब्रह्माजी हँसने लगे । गरुड़जी ने ब्रह्माजी से कहा कि आपको परिहास नहीं करना चाहिए । ब्रह्माजी बोले कि आप भगवान् के पार्षद् हैं, इसलिए आपको ऐसा विहार करना शोभनीय नहीं लगता । गरुड़जी बोले – 'ठीक है, मैं तो अपनी जाति की मादा पक्षियों से मिल रहा हूँ किन्तु आपने जो परिहास किया है तो इसका आपको दण्ड भोगना पड़ेगा ।' गरुड़जी द्वारा दिए गये इस शाप के परिणामस्वरूप ब्रह्माजी अपनी पुत्री सरस्वती को देखकर मोहित हुए और कामकातर होकर उसके पीछे दौड़े, जबकि सरस्वती ऐसा नहीं चाहती थीं । सरस्वती हिरनी बनकर भागने लगीं तो ब्रह्माजी भी हिरन बनकर अपनी पुत्री के पीछे दौड़े और इसीलिए ब्रह्माजी की आज तक बदनामी चल रही है । अतः भक्त के अन्दर कोई दोष भी है तो बड़ी समझदारी से, बड़ी मधुरता के साथ उसके साथ व्यवहार करना चाहिए, नहीं तो निश्चित रूप से भक्तापराध लग जायेगा । जो इस बात को नहीं मानता है, उसे भक्तापराध का दण्ड भोगना पड़ता है । मानमन्दिर पर पहले स्थानीय गाँवों के चालीसों लड़के रहते थे और वे इतने बहादुर थे कि अपनी उँगली काटकर रक्त से हस्ताक्षर इस प्रण के साथ करते थे कि हम लोग गह्वरवन की रक्षा करेंगे और उन्होंने गह्वरवन की रक्षा की थी । उनके भय से कोई वृक्षों को काटने के लिए गह्वर वन में प्रवेश नहीं कर सकता था । उस समय मानमन्दिर में इन वीर बालकों का एक विलक्षण क्रान्तिकारी दल बना था परन्तु भक्तापराध, आपसी राग-द्वेष के कारण वे लोग यहाँ से चले गये, ऐसे बड़े-बड़े हीरे यहाँ से चले गये, जो अपने शरीर का, अपने प्राणों का बलिदान करने के लिए तैयार रहते थे, रुपया-पैसा तो बहुत छोटी वस्तु है । मानमन्दिर में पहले चोर-डाकुओं का अड्डा था । हमारे आने के पश्चात् ऐसे सभी अड्डे समाप्त हो गये । हमारा जो अनुभव है, उसे हम बता रहे हैं कि भक्तापराध सबसे बड़ा अपराध है ।

सर्वोच्च भक्ति 'श्रीजी की शरणागति'

बाबाश्री के पदगान (२/७/२०२३) से संकलित

मेरी महारानी श्रीराधारानी ।
'जाके बल मैं सबसों तोड़ी'

सबसे तोड़ दो और राधारानी के हो जाओ । लोक से तोड़ दो । न कोई माँ है, न बाप है, न स्त्री है, न पति है, न भाई है, न बहन है, इसलिए सबसे सम्बन्ध तोड दो ।
'जाके बल मैं सबसों तोड़ी' उसके बल से तोड़ो, अपने बल से नहीं । उसके बल से तोडना मतलब फिर रोना-गाना नहीं, चाहे वह सुख दे, चाहे दुःख दे, कष्ट दे, कुछ भी दे दे किन्तु बल उसी का रहेगा । उसके बल का मतलब भोग, वासनायें सब ख़तम हो गयीं । वासनायें इन्द्रियों के बल पर आती हैं, शरीर के अध्यास से वासनायें आती हैं । देह का अध्यास ख़तम तो इन्द्रियों का भोग ख़तम, इसलिए श्रीजी के बन जाओ । हम लोग कहते हैं –

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

किन्तु पैसा भी पकड़ते हैं, नोट पकड़ते हैं, संग्रह करते हैं । ये सब वस्तुएँ राधारानी से अलग करती हैं, अतः सच्चा आश्रय पकड़ो ।

हम लोग केवल वाणी से कह देते हैं – **त्वमेव माता..... सर्वं मम देवदेव ॥** लेकिन जब पैसा पकड़ते हैं तो भूल जाते हैं कि हमने भगवान् से कहा था कि तुम्हीं पैसा (द्रविण) हो, तुम्हीं सब कुछ हो । जब सब कुछ भगवान् हैं तो फिर इन संसार की वस्तुओं को पकड़ते क्यों हो ?

जाके बल मैं सबसों तोड़ी,
लोक वेद कुल कानी ॥

सारा संसार ही भूल जाओ । किसी से न हमारी जान है, न पहचान है, न कोई मित्र है, न सहोदर है, न भाई है, न बहिन है । 'कुल सों तोड़ी कानी तोड़ी' तोड़ने का मतलब, यह याद ही नहीं रहे कि हमारा कोई संसार में है । कोई हमें मदद देगा, किसको हम चिट्ठी लिखेंगे, किससे सहायता लेंगे, किससे आशा करेंगे, यह सब छोड़ दो । एकमात्र प्रभु है, एकमात्र प्रभु ही धन है । किसी से सम्बन्ध रखना श्रीजी से अलग होना है । 'लोक' माने सारा संसार, न हमारा कोई पिता है, न हमारी माँ है, न भाई है, न कोई सम्बन्धी है, न मित्र है, न किसी से पहचान है । सन्त मलूकदासजी ने कहा है – **ऐसा कोई बन्धु नाहीं जाके पास जाइए ।**

ऐसा होने पर ही चमत्कार होता है । 'जाके बल से सबसों तोड़ी, लोक सो तोड़ी वेद सो तोड़ी' तोड़ना क्या है ? सहजोबाई ने सबसे सम्बन्ध तोड़ लिया था । उनका पद है –

हम बालक तुम माँय हमारी ।
पल-पल माँहि करहु रखवारी ॥
निशदिन गोदी ही में राखो ।
इत उत वचन चितावन भाखो ॥
विषय ओर जाने नहिं देओ ।
ढुरि-ढुरि जाऊँ तो गहि-गहि लेओ ॥
मैं अनजान कछू नहिं जानूँ ।
भली बुरी को नहि पहचानूँ ॥

हे राधे ! हम जीव हैं, जैसे नजर चूकते ही बच्चा माँ की गोद से हट जाता है, वैसे ही मैं भी आपकी कृपा से दूर होते ही आपसे विमुख हो जाता हूँ । मैं अपना भला-बुरा कुछ नहीं सोच पाता हूँ । थोड़े से नोटों की गड्डी आ गयी, थोड़ा सा भोग आ गया, उसी समय स्मृति से राधारानी गायब हो जाती हैं, हम लोग उन्हें भूल जाते हैं कि हमने तो राधारानी को पकड़ा था तो अब नोटों को क्या पकड़ेंगे, संसार के सम्बन्धियों को क्या पकड़ेंगे ?

'प्राण जीवन धन लाल बिहारी को'

राधारानी ही प्राण हैं । 'प्राण' माने इन्द्रियाँ, सभी इन्द्रियों की शक्ति 'राधारानी' ही हैं ।

तुम्हारे पास कुछ नहीं है तो राधारानी के ऊपर पानी न्यौछावर करके पी लो, जैसे ठाकुरजी करते हैं –

'वारि पियत नित पानी'

लोग मन्दिर में चरणामृत लेने जाते हैं, उस पर भी झगड़ा होता है कि हम पहले लेंगे, तुम पीछे लेना । अरे, कुछ मत लो, श्रीजी-ठाकुरजी पर जल न्यौछावर करके पी जाओ । चरणामृत भावना का होता है । न किसी को धक्का दो, न किसी से माँगो-जाँचो, दूर से ही चरणामृत ले लो, हे गोपाल-हे राधे कहकर जल उन्हें अर्पण करके पी लो, यही सच्चा चरणामृत है ।

प्राणजीवनधन लालबिहारी को,
वारि पियत नित पानी ॥

दुनिया के सम्बन्ध जितने बढ़ाओगे, उतना ही राधारानी से दूर हो जाओगे । निश्चित रूप से इसको समझ लो । न कोई चेला, न चेली, न कोई सहारा, बेसहारे हो जाओ और ये सोचो कि जब हम प्राण छोड़ेंगे, उस समय हमारे पास कोई भी पानी देने वाला नहीं रहेगा, कोई भी पूछने वाला नहीं रहेगा । ये सब आश्रय श्रीजी से दूर करते हैं । ये निश्चय कर लो कि अकेले ही हम मरेंगे, अकेले ही चिल्लायेंगे – राधे राधे राधे । किसी की सहायता नहीं माँगेंगे ।

'भगवत रसिक सहायक सब दिन'

'सब दिन' अर्थात् चाहे मौत की घड़ी है, चाहे कष्ट की घड़ी है, चाहे मरने का समय है, उस समय भी माता-पिता, भाई-बन्धु आदि कोई सहायता नहीं कर सकता । उस समय कौन सहायता देगा ? सब दिन माने जीते, मरते, मरने के बाद भी जीव का जो सम्बन्ध रहता है आत्मा से, वह चाहे स्वर्ग जाए, चाहे नरक जाए, सम्बन्ध तो बना रहता है । अगर भगवान् से सम्बन्ध बना रहेगा तो नरक आदि कुछ नहीं होगा, स्वर्ग आदि भी कुछ नहीं रहेगा । प्राण यदि

राधारानी को दे दिया तो मारने वाला क्या मारेगा ? प्राण तो राधारानी के पास पहुँच गया तो फिर तुम मरोगे नहीं क्योंकि प्राण पहुँच गया अपनी बैंक में । बैंक हैं राधारानी, वहाँ अपने प्राण जमा कर दो, संसार में किसी प्राणी के पास अपने प्राण मत रखो, न बेटा, न स्त्री, न माता-पिता, प्राण एकमात्र राधारानी को दे दो । उनकी इच्छा हो तो जिलावें, उनकी इच्छा हो तो मारें । यों भी वाह-वाह, वो भी वाह-वाह । प्राण जीवन धन लाल बिहारी को । अगर बिहारी जी नहीं आये तो मत आवें । वारि पियत नित पानी । बिहारीजी को बुलाओ, यदि वे नहीं आते हैं तो न आओ । ये मत समझो कि राधारानी बनी (बने-बनाये) की साथी हैं । भगवत रसिक सहायक सब दिन – सब दिन माने मरने के बाद भी राधारानी सहायता करेंगी, जीते जी करेंगी । मर जाओगे तो न माँ सहायता करेगी, न पिता सहायता करेगा, न बेटा, न बेटी, कोई कुछ नहीं करेगा । मरने के बाद भी केवल राधारानी ही सहायता देंगी ।

'भगवत रसिक सहायक सब दिन'

सब दिन सहायक – सब दिन माने, चाहे भूखे हो, चाहे प्यासे हो, चाहे जी रहे हो अथवा मर रहे हो, कष्ट में हो, चिल्ला रहे हो, केवल राधारानी की सहायता माँगो और न माँ की सहायता माँगो, न बाप की माँगो, न भाई की, न पति की, न पत्नी की, न पुत्र की । जब तक जी रहे हो, शरीर में, इन्द्रियों में, प्राण में ताकत है, केवल यही सोचो –

'भगवत रसिक सहायक सब दिन'

यह बात हम यूँ ही नहीं कह रहे हैं । तीन बार मृत्यु हमको मारने के लिए आई, शरीर में कई प्राणघातक रोगों का हमला हुआ, डॉक्टरों ने जवाब दे दिया, उस समय लोग हमको अस्पताल में ले गये । वहाँ आठ डॉक्टर थे, उन्होंने कह दिया कि इनका बचना असम्भव है किन्तु मृत्यु हमको मार नहीं पायी क्योंकि श्रीजी हमारी रक्षा करती थीं ।

भगवत रसिक सहायक सब दिन,
सर्वोपरि सुख दानी ॥

देने वाली राधारानी ही हैं, प्राण का दान वे ही देंगी । दुनिया वाले तो प्राण छीन लेते हैं, प्राण की शक्ति नष्ट करते हैं, चाहे स्त्री हो, चाहे पति हो । ये सब प्राणों की शक्ति नष्ट करते हैं । प्राण देने वाली तो एकमात्र राधारानी ही हैं ।

बेटा माँ के लिए अथवा अन्य किसी के लिए अपनी बहू को नहीं छोड़ पायेगा । कोई भी सम्बन्धी अपना सम्बन्ध नहीं छोड़ सकता, न धन छोड़ सकता है, न अपना स्नेह । एकमात्र राधारानी ही हैं – **'सर्वोपरि सुख दानी'**

निष्काम भक्त का भगवान् भी ऋणी है, सुखदानी है, सुख देता है, कौन-सा सुख ? लड्डुआ-पेड़ा और भोगों का सुख नहीं, अन्तरात्मा का सुख देता है । ये सब भोग, इनकी आशा, तुमको राधारानी से अलग करेगी, दूर कर देगी, कभी तुम राधारानी को याद भी नहीं कर पाओगे । इसलिए श्रीराधिकारानी का सच्चाई के साथ सर्वात्मभाव से आश्रय लो, यही सबसे बड़ी भक्ति है, सबसे बड़ा प्रेम व आनन्द है ।

आनन्द-मंगल की जननी 'गौमाता'

राधारानी का तो प्राकट्य ही गौसेवी वंश में हुआ है । राधारानी सूर्यवंशी थीं । जिस वंश में राजा दिलीप जैसे गौसेवी भक्त हुए हैं । राजा दिलीप के लड़कों में से जो सबसे छोटे थे इनका नाम धर्म था, उन्होंने पिताजी जा अनुकरण किया और बोले कि हमें राज्य नहीं चाहिए । हम तो केवल गाय की सेवा करेंगे । धर्म के बाद इसी वंश में आगे चलकर अभयकर्ण जी हुए । रामजी की आज्ञा से शत्रुघ्नजी जब ब्रज में आये तो अभयकर्ण भी इनके साथ आये, क्योंकि रामजी ने उनको यह आज्ञा देकर के भेजा था कि ब्रजमण्डल गौसेवा के लिए उपयुक्त स्थान है, वहाँ जाकर तुम गौसेवा करो और आगे तुम्हारे वंश में श्रीराधारानी का प्राकट्य होगा । अतः अभयकर्ण जी शत्रुघ्न जी के साथ ब्रज में आये और यहाँ रहकर गौसेवा करने लगे । इन्हीं के वंश में रशंग जी हुए, जिन्होंने बरसाना नगर बसाया है और इन्हीं रशंग जी के वंश में ही राजा वृषभानु और राधारानी हुई हैं । इसलिए राधारानी ये सूर्यवंशी थीं और गौसेवी कुल में आयी हैं ।

श्रीराधारानी और गोपियाँ इतनी बड़ी गौभक्ता थीं कि जिस समय श्रीकृष्ण ने वृष रूपधारी अरिष्टासुर का वध

किया था तो उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा कि अब तुम हमारा स्पर्श नहीं करना –

ततस्तु राधिकात्यक्तो ललितामोहनस्तदा ।
अस्माकं नैव संसर्गो विमोचनं वृषहत्यासमन्वितः ॥

"हे कृष्ण ! हे वृषवधक ! अब तुम हमें न छूना, तुमने एक वृष की हत्या की है । गौवंश पर आघात किया है ।" श्रीकृष्ण ने कहा कि वह तो असुर था । राधारानी बोलीं – "भले ही वह असुर था परन्तु उसका स्वरूप तो बैल का था, वह गौवंश में आता है, इसलिए तुमको गौ-हत्या लग गयी ।" अब तुम हमारा स्पर्श भी मत करो । यद्यपि श्रीकृष्ण ने बहुत समझाया कि मैंने तो सारे ब्रज की रक्षा की, यदि मैं उसे नहीं मारता तो वह सारे ब्रज का विनाश कर देता लेकिन राधारानी ने उनकी बात नहीं मानी क्योंकि उनमें सच्ची गौ निष्ठा थी । श्रीकृष्ण ने सोचा कि ये बहुत ऊँची गौभक्ता हैं, इनकी निष्ठा का हमें सम्मान करना चाहिए, इसलिए वह बोले – "हे प्यारी जू ! मैं कौन-सा धर्माचरण करूँ, जिससे तुम्हारी दृष्टि में इस गौहत्या के पाप से मुक्त हो जाऊँ । राधारानी बोलीं – "तुम तीर्थों में जाकर स्नान करो, तभी तुम्हारा गौ-हत्या का पाप नष्ट होगा ।" श्रीश्यामसुन्दर बोले कि यदि मैं तीर्थों में जाकर स्नान कर भी आऊँगा, तब भी तुमलोग मुझ पर विश्वास नहीं करोगी और कहोगी कि नन्द का लाला झूठ बोला रहा है, बिना स्नान किए ही बाहर घूमकर लौट आया । अतः मैं पृथ्वी के समस्त तीर्थों को यहीं ब्रज में बुलाता हूँ । उसी समय श्री ठाकुर जी ने भूमि पर अपनी पार्ष्णि (एड़ी) से प्रहार किया और समस्त तीर्थों को आहूत किया कि हे समस्त तीर्थों ! कृपया आप यहाँ पधारिये ! तब सभी तीर्थ मूर्तिमान वहाँ उपस्थित हो गये । श्री कृष्ण बोले (गोपियों से) – "देखो ! अब तुम सब तीर्थों के दर्शन कर लो, कहीं फिर मुझे झूठा बना दो कि तुमने कहाँ और कब तीर्थ बुलाये, उनमें स्नान किये ।" किन्तु गोपियाँ तो गोपियाँ हैं, बोलीं –"हमें तो कोई तीर्थ नहीं दिखाई दे रहा है ।" ठाकुर जी सोचने लगे कि ये कितनी चतुर हैं । सामने तीर्थ साक्षात् खड़े हैं और कहती हैं कि हमें तो कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है तो वे सब तीर्थ स्थल करबद्ध होकर अपना अपना परिचय देने लगे ।

प्रोचुःकृताञ्जलिपुटा लवणाब्धिरस्मि क्षीराब्धिरस्मि श्रृणुतामरदीर्घिकास्मि । शोणोऽपि सिन्धुरहमस्मि भवामि ताम्रपर्णी च पुष्करमहञ्च सरस्वती च गोदावरी रविसुता सरयूः प्रयागोरेवास्मि पश्यत जलं कुरुत प्रतीतिम् ।

(विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद कृत टीका भा.१०/३६/१५)

"मैं लवणसागर हूँ, मैं क्षीरसागर हूँ, मैं सोन नदी हूँ, मैं ताम्रपर्णी नदी हूँ, मैं पुष्कर तीर्थ हूँ, मैं सरस्वती नदी हूँ, मैं गोदावरी हूँ, मैं यमुना हूँ, मैं अयोध्या से सरयू हूँ, मैं प्रयाग की संगम स्थली हूँ, मैं रेवा नदी हूँ ।

जरा हमारे निर्मल जल की ओर देखो और हमारे ऊपर विश्वास करो ।" तब गोपियों ने कहा – "ठीक है अब हमें तीर्थ दीख गये हैं, तुम इनमें स्नान करो ।" तब उन सभी तीर्थों के एकत्रित जल में श्री कृष्ण ने स्नान किया और बोले – "देखो अब तो मैं पवित्र हो गया हूँ ।" स्नान करने के उपरान्त गोविन्द ने श्री राधारानी से पूछा – "अब तो तुम हमारा स्पर्श करोगी, मुझे अपनाओगी ?" वह बोलीं – " हे प्यारे ! अब तुम शुद्ध हो गए हो ।" तो ऐसी श्रीराधारानी की गौ निष्ठा थी ।

राधामाधव की अन्तरंग लीलाओं में एक लीला है दानलीला; बरसाने में दान लीला दो जगह होती है साँकरी खोर और दानगढ़ । दानगढ़ 'रतिदान (प्रेमदान) व छद्म दान' लीला की स्थली हैं । दान लीला में श्रीराधारानी एवं गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं कि प्यारे तुम मार्ग में हमें रोककर हमसे दान लेते हो? हम छकहारिनों को छेड़ते हो, कभी हमारे वस्त्राभूषण व चूनरी चुरा लेते हो, क्या ये सब पापकृत्य नहीं हैं ? तुम इतना पाप करते हो किन्तु हमने तुमको कभी किसी तीर्थ में स्नान करते नहीं देखा, कभी भजन करते नहीं देखा ।"

प्यारे ! कैसे छुटोगे पाप से, काऊ तीरथ हू नहिं न्हात हो

"अरे कन्हैया ! इन पापों के बोझ से तुम कैसे छूटोगे? हमने तुमको कभी न भजन करते देखा, न तीर्थ स्नान करते, तुम्हारा ये चोरी छिनारी आदि का पाप कैसे जायेगा?"

गोपियों की बात सुनकर श्यामसुन्दर बोले "अरे ! मेरे जैसा धर्मात्मा संसार में कोई दूसरा होगा ही नहीं । मैं जैसा धर्म, भजन, तीर्थ स्नान करता हूँ, वैसा संसार में कोई नहीं कर सकता । **'प्यारी गौरज गंगा नहात हौं और जपत गऊन के**

नाम हौं ।' हे गोपियो ! गौ रज गंगा से बड़ा कोई तीर्थ है क्या?" मैं गौ रज से स्नान करता हूँ, बस उसी से मुझे सब तीर्थों में स्नान करने का फल मिल जाता है क्योंकि पुराणों में लिखा है – सभी देवता गाय के अंग में हैं, सभी तीर्थ गाय के खुर में हैं और लक्ष्मी गोबर में हैं । गौ रज से जो तिलक कर लेता है, उसका सब तीर्थों का स्नान हो जाता है ।' इसलिए **'प्यारी ! गऊ रज गंगा न्हात हौं....।'** प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम मैं गौ-रज गंगा में स्नान करता हूँ और **'जपत गऊअन को नाम ।'** गायों के नाम का जप करता हूँ । (गौचारणकाल में जब गायें वन में घास चरने के लिए बहुत दूर-दूर तक चली जाती हैं तो श्रीकृष्ण उन्हें अपने पास बुलाने के लिए उनका नाम लेकर पुकारते हैं – अरी धौरी ! ओ कारी !! अरे धूमर !!!.....) जिस प्रकार संतजन अपने इष्टदेव का नाम-जप करते हैं, उसी प्रकार मैं गौओं के नाम का प्रतिदिन जप करता हूँ, यह बहुत बड़ा भजन है । इसीलिये **'परम पुनीत सदा रहौं ..'** पाप तो मेरा कभी स्पर्श भी नहीं कर सकता । मैं तो सदा-सर्वदा पवित्र बना रहता हूँ ।

जो गौभक्त है, उसके पास पाप कभी आ ही नहीं सकता, वह परमपावन व मंगलमय है । गौ-सेवक हर समय गायों का दर्शन करता रहता है, गौमाता इतनी पवित्र हैं कि सभी पापों को समूलतः नष्ट कर देती हैं ।" गोपालजी के गौभक्तिमय वचन सुनकर श्रीराधारानी सहित ब्रजगोपिकाएँ निरुत्तर हो गईं ।

श्रीनन्दबाबा और समस्त ब्रजवासी पहले दीपावली के अवसर पर इन्द्र की पूजा करते थे लेकिन श्रीकृष्ण ने इन्द्र पूजा बंद करवाकर नन्दबाबा एवं समस्त ब्रजवासियों से गोयज्ञ करवाया और वहाँ नन्दबाबा से स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है कि इन्द्र आदि देवों की पूजा करने की जरूरत नहीं है क्योंकि गायों की पूजा करो, गिरिराज जी की पूजा करो

तस्माद् गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ।
य इन्द्रयागसम्भारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥

(श्रीभागवतजी १०/२४/२५)

गाय, ब्राह्मण, गिरिराज इन तीनों का पूजन करें ।" ! हमारे ये गिरिराज जी तो भक्तों में भी आर्य भक्त हैं ।" यही सम्मति, यही कथन, गोपियों का भी है – (श्रीभागवतजी १०/२१/१८) गोधन का वर्धन ही इनके गोवर्धन नाम होने का मुख्यभूत हेतु है । दिनभर हमारी गायें इन पर चरती हैं ।

सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च ।
तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः ॥
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलंक कुरुते नरः ।
तीर्थस्नातो भवेत् सद्यो जयस्तस्य पदे पदे ॥
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम् ।
प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम् ॥

(श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण २१/९०-९४)

(श्री कृष्ण, बाबा नन्द से) "बाबा ! गौ अंग में सब देवों का निवास, गौ खुर में सब तीर्थों का निवास ; गौगुह्यअंग (गोबर) में स्वयं श्री लक्ष्मी जी का नित्य निवास है । तभी गौरज का तिलक कर लेने पर तत्काल सब तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होता है और गौरज धारी पग-पग पर विजयी होता है । गौ-खिरक में प्राण-त्याग से निःसंशय मुक्ति हो जाती है । जो अनार्य पुरुष गौ, ब्राह्मण के शरीर पर आघात करता है, निश्चित ही उसे ब्रह्महत्या सदृश पाप लगता है ।"

नन्द – "किन्तु बेटा ! इन्द्र पूजन से, हमारी आगामी आपदाओं का नाश हो जाता है । इन्द्रयाग तो पारम्परिक पूजन है, हम अहीरों का ।"

कृष्ण – "बाबा ! इन्द्र कौन वस्तु है ? अरे ! श्री हरि के एक निमेष में १०८ ब्रह्मा बदल जाते हैं, उनके समक्ष इन्द्र सर्वथा सत्ताहीन है । अतः गोपजाति के लिए गिरि-पूजन ही सर्वोत्कृष्ट है ।"

श्री कृष्ण के इस ओजस्वी, प्रभावशाली भाषण को सुनकर सब ब्रजवासियों के मन-मष्तिक में अद्भुत गौ-विप्र-गिरि पूजन की आस्था जगी और उन्होंने गौ-यज्ञ किया –

अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः ।
वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन् सद् व्ययं विभुः ॥

(श्रीभागवतजी ३/२/३२)

भगवान् ने गौ-महोत्सव (गिरिराज-यज्ञ) इसीलिये करवाया कि गिरिराजजी की तलहटी में गायें आवें, जिससे गायों को खूब चारा (हरी-भरी घास चरने को) मिले । **"गाः वर्द्धयति इति गोवर्द्धनं"** जो गायों की वृद्धि करता है उसका नाम 'गोवर्द्धन' है । अतः कृष्ण ने नंदबाबा से कहा कि बाबा ! गायों का ही यज्ञ करो, किसी देवता का मत करो । ब्रज में

गायों की सेवा से धन बहुत बढ़ गया था । **'वित्तस्य चोरुभारस्य'** ब्रज में इतना धन बढ़ गया कि कृष्ण को चिन्ता हो गई कि इसे जल्दी कैसे खर्च कराया जाए ? नंदबाबा के बढ़े हुए वित्त (धन) का सद्व्यय (सदुपयोग) कराने के लिए श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन-पूजन (गौ-यज्ञ) करवाया ।

धन एक बोझ है, धन बढ़ गया तो निश्चय पाप बढ़ गया, उस धन को नहीं संभालोगे तो पाप ले बैठेगा । 'चिकीर्षन् सद् व्ययं विभुः' उसका इलाज है कि धन बढ़ गया तो धर्म में लगा दो । धर्म में लगाने से पैसा बढ़ता जाएगा और सुरक्षा भी बढ़ती जाएगी ।

लक्ष्मी के सुत चार हैं धर्म, अग्नि, नृप, चोर ।
धर्म हेतु खर्चे नहीं तो तीन करें भड़फोर ॥

गोविन्दलीलामृत में श्रीकृष्ण ने यशोदा जी से कहा है कि मैया गौ-सेवा के प्रताप से चारों ओर सुख-समृद्धि, धन-संपत्ति आयु, यश और धर्म की वृद्धि होती है । गोपालन करने के कारण कभी भी आपत्ति नहीं आ सकती । गौ-पालन, गौ-रक्षा एक ऐसा धर्म है जिससे आयु और यश की वृद्धि होती है, मनुष्य की अकाल मृत्यु भी टल जाती है । ये श्रीकृष्ण ने मैया यशोदा से उस समय कहा था जब यशोदा मैया ने बालकृष्णलाल से बहुत आग्रह किया कि लाला ! तू छतरी लगाकर और पादुका पहनकर जायेगा तो मैं गौचारण करने की आज्ञा दूँगी । तब श्रीकृष्ण बोले कि हे मैया ! गौ-चारण के समय हम छतरी नहीं लगायेंगे और न ही पैरों में पादुका पहनेंगे क्योंकि –

गोपालनं स्वधर्म्मो नस्तास्तु निश्छत्र-पादुकाः ।
यथा गावस्तथा गोपास्तर्हि धर्म्मः सुनिर्म्मलः ॥

निर्मल धर्म यही है कि जैसे गाय हमारी इष्ट है तो जिस प्रकार गाय रहती है, उसी प्रकार गोपालक ग्वारिया (गोपाल) को भी रहना चाहिए, जब गाय के पास छतरी नहीं है तो ग्वारिया के पास भी न हो, ये है सच्चा गौपालन-धर्म । सुनिर्मल धर्म वही है, जिसमें कष्ट सहा जाए ।"

यशोदा मैया बोलीं – "बेटा ! तू हमें धर्म की शिक्षा दे रहा है, धर्म से क्या होगा ?" गोपालजी बोले – "मैया !

धर्मादायुर्यशो वृद्धिर्धर्म्मो रक्षति रक्षितः ।(श्रीगोविन्दलीलामृत ५/२८,२९)
स कथं त्यज्यते मातर्भीषु धर्म्मोऽस्ति रक्षिता ॥

धर्म की रक्षा करने से हमारी आयु की वृद्धि होगी, कंस और उसका कोई भी असुर हमें मार नहीं सकता क्योंकि हम गोपालक हैं । देखो तो सही, कंस का कोई भी असुर मुझे और किसी भी ग्वारिया को हानि नहीं पहुँचा सका । मुझे तो क्या, गौचारण के समय किसी अन्य छोटे से गोपशिशु को भी कंस के भेजे हुए भयंकर दैत्य अघासुर, बकासुर आदि कोई हानि नहीं पहुँचा सके । धर्म से मनुष्य की आयु का वर्द्धन होता है, धर्म से यश बढ़ता है, ऐसे धर्म का त्याग मैं कैसे कर सकता हूँ ? जो कायर लोग होते हैं वे धर्म का पालन नहीं करते हैं । क्या तू मुझको भीरु बनाएगी । माँ ! तू भूल रही है, भय के स्थानों में यही धर्म हमारी रक्षा करता है । जो 'धर्म' समझकर गौ-पालन करता है तो यही धर्म उसकी रक्षा करता है ।" ब्रजवासियों की गौभक्ति के कारण ही कंस के द्वारा भेजे हुए असुर अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुए । तुम धर्म की रक्षा करोगे तो धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा । यदि तुम धर्म की रक्षा करते हो तो 'मृत्युकाल, व्याधि व विपत्तियों में 'धर्म' ही तुम्हारी रक्षा करेगा ।

श्रीकृष्ण ने जो गौसेवा की उससे न केवल भारत की प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व की रक्षा हुई थी । गोपियाँ कहती हैं –

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।

(श्रीभागवतजी १०/३१/१८)

कृष्ण ! तुम्हारे आने से विश्व मंगल हुआ । कैसे? तुमने 'गौ सेवा' की । जिस समय अक्रूरजी रथ पर बैठाकर कृष्ण-बलराम को मथुरा ले जाने लगे, तो यशोदा मैया पुनः अपने लाला के अनिष्ट (अमंगल) की आशंका (चिन्ता) से कृष्ण-बलराम को रोकने के लिये रथ के पीछे आ रही थी; जैसे ही श्रीकृष्ण ने देखा कि मेरी मैया तो मेरे पीछे ही दौड़ती हुई चली आ रही है तुरन्त ही 'कृष्ण' रथ से कूदकर मैया के गले लगकर समझाने लगे कि हे मैया ! जब तक ब्रज में गौवंश की सेवा हो रही है, गायों की वृद्धि होती रहेगी तब तक हमारा कभी भी कोई किसी प्रकार का अमंगल 'अनिष्ट' (मारने का प्रयत्न) नहीं कर सकेगा । गौमाता के प्रसन्नतापूर्वक पालन-पोषण होने से हम सब ब्रजवासियों का हर समय मंगल ही मंगल (आनन्द ही आनन्द) होगा । हे माँ ! तू मेरे लिए किसी भी प्रकार से भयभीत न हो । इस बात को सुनकर यशोदा मैया के मन में धैर्य बँधा

और विश्वास हो गया कि मेरा कन्हैया सकुशल लौटकर आ जाएगा । अतः गायों की सेवा से हम सबका सदा मंगल (कल्याण) ही होता है ।

गौ-महिमा को समझे बिना गौ-सेवा अपूर्ण रहती है । आइये, हम सब देखें कि धर्मग्रन्थों में गौ-महिमा का गान किस प्रकार किया गया है ? (१) अदिति (गौ) ही द्युलोक है, अन्तरिक्ष है, माता है, पिता है, पुत्र है और समस्त देव है । अतीत कालीन वस्तु समूह और भविष्य में होने वाला सब कुछ अदिति ही है ।

(ऋग्वेद १/८९/१०)

(२) धेनुं सदनं रवीणाम् – गौ सम्पत्ति का घर है ।

(अथर्ववेद ११/१/३४)

(३) हे अवध्य गौ ! जन्म लेते समय तुम्हारा वन्दन और जन्म हो जाने के बाद भी तुम्हारा वन्दन । तुम्हारे स्वरूप, रोम और खुरों को भी वन्दन । तुमने द्युलोक, पृथ्वी और जल को सुरक्षित रखा है तथा तुम सहस्त्र धाराओं से दूध देने वाली हो । (अथर्ववेद १०/१०/१,४)

(४) गोस्तु मात्रा न विद्यते – गौ अनुपमेय है ।

(यजुर्वेद २३/४८)

(५) जहाँ पर गौएँ रहती हैं, वहाँ विष्णु भगवान् का परम प्रकाश प्रकाशित रहता है । (शुक्ल यजुर्वेद ६/३)

(६) गौ के घर में रहने से हम धनादि से परिपूर्ण होकर समस्त कार्यों को करने में समर्थ हो सकते हैं ।

(शुक्ल यजुर्वेद ७/१०)

(७) गवोपनिषद् – (सौदास उवाच)

गौएँ समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठा (आधार) हैं । गौएँ ही उनके लिए महान मंगल की निधि हैं । गौओं को जो कुछ दिया जाता है, उसका पुण्य कभी नष्ट नहीं होता है ।

गौओं का नाम कीर्तन किये बिना न सोयें । उनका स्मरण करते हुए ही उठें । सबेरे-शाम उन्हें नमस्कार करें । ऐसा करने से बल और पुष्टि की प्राप्ति होती है ।

(८) गौ सामान्य प्राणी होने पर भी उसे अपने प्राणों के समान देखना चाहिए । (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, ४८/११३)

(९) जो मनुष्य प्रतिदिन स्नान करके गौ का स्पर्श करता है, वह सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है । जो गौओं के खुरों से उड़ी हुई धूलि को अपने सिर पर धारण करता है, वह मानो तीर्थों के जल में स्नान कर लेता है और सभी पापों से छुटकारा पा जाता है । (पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड - ५७/१६४,१६५)

(१०) स्कन्द पुराण –

हे निष्पापे ! तुम समस्त देवों की माता और सम्पूर्ण तीर्थों की तीर्थरूपा हो । हम तुम्हें सदा नमस्कार करते हैं । तुम्हारे ललाट में चन्द्रमा, सूर्य और वृषभ ध्वज शंकर हैं । तुम्हारी हुंकार में सरस्वती, गल कम्बल में नागगण, खुरों में गन्धर्व और चारों वेद तथा मुखाग्र में चर एवं अचर सम्पूर्ण तीर्थ विराजमान हैं । (ब्रह्म० धर्मारण्य० १०/१८,१९,२०)

गोमय (गाय के गोबर) में लक्ष्मी का निवास रहता है । उसके द्वारा भूमि को लीपने से लक्ष्मी स्वयं वहाँ आ जाती हैं । (अवन्ती० रे०, ८३/१०८)

(११) विष्णुधर्मोत्तर पुराण – जिस जलराशि में प्यासी गायें जल पीकर अपनी तृषा शान्त करती हैं और जिस मार्ग से वे जलराशि को लाँघती हुई नदी को पार करती हैं, वहाँ सरस्वती नदी विद्यमान रहती हैं । गौ रूपी तीर्थ में गंगा तथा सभी तीर्थ निवास करते हैं । गौओं के रजकण में निरन्तर बढ़ने वाली धर्मराशि एवं पुष्टि का निवास रहता है । उनके गोबर में भगवती लक्ष्मी निरन्तर निवास करती हैं । उन्हें प्रणाम करने में चतुष्पाद धर्म सम्पन्न हो जाता है । उन्हें निरन्तर प्रणाम करना चाहिए । (द्वितीय खण्ड ४०/४१)

गोमूत्र में भगवती गंगा, गो-दधि, गो-दुग्ध और गो-घृत में सोम तथा गोरोचना में भगवती सरस्वती सदा प्रतिष्ठित रहती हैं । गौओं के रोएँ अत्यन्त पवित्रताप्रद और पुण्यदायक हैं । (तृतीय खण्ड, अध्याय २९१)

गौओं के श्वास-प्रश्वास से घर में महान शान्ति होती है । उन्हें छू देने मात्र से सारे पाप क्षीण हो जाते हैं । गौओं का गोबर और मूत्र सम्पूर्ण अलक्ष्मी का नाश करता है । गोमूत्र, गोमय (गोबर), गोदुग्ध और गोरोचना – ये सब प्रकार से कल्याण-मंगल का विस्तार करने वाले हैं । (पुष्कर उवाच)

(१२) गौओं में समस्त देवगण निवास करते हैं ।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड - २१/९१)

(१३) गायें सभी प्राणियों की माता हैं । (महाभारत, अनु.पर्व – ६९/७)

पूज्य बाबा महाराजजी हरिनाम प्रचार करने बिजवारी (नंदगाँव) पहुँचे

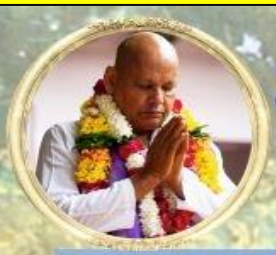

श्री मानमंदिर

प्रस्तावित पुनरुद्धार रेखांकित चित्र

मान मंदिर लीला स्थल श्रीराधाकृष्ण की लीला स्थलियों में सबसे प्रमुख है
इस अति विलक्षण लीला स्थली के पुरुद्धार कार्य में जुड़ कर धाम सेवा का दुर्लभ लाभ प्राप्त करें
सेवा राशि देकर रसीद अवश्य प्राप्त करें।

ACCOUNT NUMBER: 59109927338666
IFSC CODE: HDFC0000268
BANK: HDFC BANK LTD
BRANCH: BSA COLLEGE, MATHURA
संपर्क :9927338666
www.maanmandir.org
आपकी सेवा राशि आयकर अधिनियम 80G/12A के अंतर्गत आयकर छूट के लिए मान्य है
रजिस्ट्रेशन नंबर AADTS716DE2021401

ACCOUNT NAME
SHRI MAAN BIHARI
LAL MANDIR SEVA
ACCOUNT NUMBER: 59109927338666
IFSC CODE: HDFC0000268
BANK: HDFC BANK LTD
BRANCH: BSA COLLEGE, MATHURA

मान मंदिर लीला स्थल श्रीराधाकृष्ण की लीला स्थलियों में सबसे प्रमुख है
इस अति विलक्षण लीला स्थली के पुरुद्धार कार्य में जुड़ कर धाम सेवा का दुर्लभ लाभ प्राप्त करें

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट, गह्वरवन, बरसाना (मथुरा)
www.maanmandir.org; संपर्क :9927338666

QR कोड

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2024-2026 श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ़्सेट प्रिंटर्स

A- 125/1 , wazipur industriyal area, new delhi- 52 से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संसथान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से

प्रकाशित [AGRA/WPP-12/2024-2026 AT 31.12.26]